

हिन्दी गद्य वाटिका

ग्रन्थ रखाफर कार्यालय, बम्बई सा—बहुत आभारी हूँ जिन जी रचनाया और पुस्तकों मे मे में १ इस संग्रह के लिए लेख लिए हैं। 'हिन्दी गद्य का विकास' शीर्षक लेख की सामग्री मुझे प्राफसर अयाय्यानाथ मम० म० जी 'गद्य मुक्तावली' नामक पुस्तक से प्राप्त हुई है। उसमें जिन में उनका भी आभारी हूँ। जहाँ तक मुझे से या पडा है मैं न मभी लेखकों और प्रकाशकों से उनकी रचनाया का उपयोग करने की अनुमति लेने या यत्र किया है और उन्हा ने दृपापूरक मुझे अनुमति प्रदान भी कर दी है, परन्तु फिर भी टा एक सज्जनों को जवाबी पत्र लिखन पर भी उनका कोई उत्तर मुझे प्राप्त नहीं हुआ। इसका कारण शायद यह हो कि उनका ठीक ठिकाना मुझे मालूम न रहा हा। पम सज्जनों से, उनकी अनुमति प्राप्त किए बिना ही उनके लेखा का उपयोग करने के लिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

साहित्य सदा
वृष्णनगर—लाहौर।

}

-सन्तराम

हिन्दी गद्य साहित्य

नदियों उस में आकर मिल जाता है। इस प्रकार हिन्दी में भी संस्कृत, फारसी, अरबी, अँगरेजी आदि अनेक भाषाओं का शब्द और मुहावर समय समय पर मिलते रहते हैं। उन्हीं का मिश्रण ही परिणाम इस का वर्तमान रूप है।

हिन्दी की उत्पत्ति व सम्पन्न व विद्वाना व शायक है। कुछ लोगो की राय है कि पहले संस्कृत भाषा जाती जाती थी। उसमें से पहले वाली भाषा निकली। गीता का साहित्य इसी भाषा में है। पाली से फिर मराठी और संतना, मागधी आदि प्राकृत और अपभ्रंश भाषाएँ निकलीं। फिर इन अपभ्रंश भाषाओं से राजस्थानी ब्रज और हिन्दी का रचना वाला का जन्म हुआ। कुछ दूसरे विद्वान यह कहते हैं कि संस्कृत अभी भी सब साधारण का भाषा नहीं हुई। परन्तु विद्वान लोग ही इसका उपयोग साहित्य में किया करते थे। समाचारण अपन नित्य व व्यवहार में प्राकृत का ही उपयोग करते थे। उनकी इस प्राकृत से ही मराठी, गुजराती, पंजाबी और हिन्दी का क्रमशः विकास हुआ है। परन्तु इस बात में सभी विद्वान सहमत हैं कि हिन्दी शुरू से दश अर्थात् ब्रज मण्डल में बनी जा रही प्राकृत की पुत्री है। इस पुरानी हिन्दी का आरम्भ विजय की आठवीं शताब्दी में माना जाता है।

हिन्दी में जो सब से पुराने ग्रन्थ मिलते हैं वे पद्य में हैं। इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर हिन्दी का शब्द विभाग किया

हिन्दी गद्य गतिशा

(३) उत्तर मध्य काल (रीति-काल) । सन्त १७००—१८०० वि० ।

(४) आधुनिक काल (गद्य गति) । सन्त १६००—यत्न तक ।

कालों के ये नाम उस काल में ही पाली रचनाओं की प्रधानता के कारण रखे गये हैं । उदाहरण के लिये, आधुनिक काल में यद्यपि लाग पद्य भी लिखते हैं परन्तु प्रधानता गद्य की ही है । इस लिये इसका नाम गद्य काल रखा गया है ।

हिन्दी गद्य का सत्र में पुराना ग्रन्थ 'सुमान रासो' माना जाता है । इस से पुराना ग्रन्थ और पाइ नहीं मिला । इसका रचना काल सन्त ६०० के लगभग अनुमान किया गया है । हिन्दी गद्य का पहला उदाहरण तेरहवीं शताब्दी में महाराजा पृथ्वीराज और चित्तौर के राजा समर सिंह के दान पत्रा में मिलता है । 'मिवाड की सनद' सन्त १०२६ में लिखी गई थी । उस की कुछ पत्तियाँ नीचे दी जाती हैं—

स्वमि श्री श्री चित्रकूट महाराजाधिरान तपे राज श्री श्री राजल जी श्री समरसो यचनातु दा अमा आचारतु ठाकुर रूपीनेप कस्य धाने दली सु डायजे लाया अजीराज में औपद थारी लावेगा ओपद ऊपरी माल की थाकी है बी जनाना में थारा यमरा टाला ओ दूओ जावेगा नहीं और थारी कैक दली में ही जी प्रमाणे प्रथम

राज्यमल के मह जो बीभाग पर होत ।

इसके अनन्तर 'भुवन दीपिका' नामक ज्योतिष ग्रन्थ की भाषा टीका (स० १६७१) फिर सन् १६८० में तिसवीं जटमत्त कशीप्रवर कृत 'सागरादल की रथा', फिर 'कुण्ड मुक्ता' (१६७५—८४) रचित 'रामायण साहाय्य' और 'शुभ हन साहाय्य' नामक दो ग्रन्थ प्रजभाषा गद्य में मिलते हैं । इन के बाद सन् १७०७ में मनोहर दास निरञ्जना की कृष्ण गद्य पुस्तकें आती हैं । इसके बाद सन् १७१५ में आस पास जगन्नी चारण कृत 'शुभमोक्षदायक प्रचिनिका' मिलती हैं । यह राजपूतानी हिन्दी में है । इस के बाद (सन् १७५७—१७८१ क्रि.श.) जाधपुर के राजा यशवन्त सिंह के पुत्र अमरसिंह की "गुणसार" नामक पुस्तक मिलती है । इसी काल (१७६०—१८४०) में अमरसिंह कायस्थ ने 'बिहारी सतसह' की गद्य में टीका लिखी । इस का नाम 'अमर चन्द्रिका' है । सन् १८२८ में लगभग कर्तेश ने मतिगम के 'रसरत्न' का निरूपण किया ।

इस समय उत्तर भारत में अँगरेजी राज्य स्थापित हो चुका था । अँगरेजों का एसी पुरतकों की आवश्यकता प्रतीत होती थी जिन से वे देश की बोन चाल की भाषाएँ सीख सकें । इस लिए इन्होंने हिन्दी गद्य में पुस्तकें लिखाईं । इन्हीं में से मुन्शी सदासुखलाल (सन् १८०५—१८८१) ने

शब्दों का भी प्रयोग पाया जाता है। उनका हिन्दी का नाम
देविण—

किसी समय में ब्रह्मा के पुत्र एमे उद्दालक मुनि भण्डि तिनके
दर्शन से लोग पवित्र होते थे। वेद पुराण श्रुति स्मृति में बहुत निपुण
और दाता दयालु कहिये तो वैसे ही, बड़े समर्थ मय मुनियों में श्रेष्ठ,
कि तिनका तपस्या ही धन था उनका मुहावरण आश्रम पर कि तिनको
बड़े बड़े मुनि लोग नित्य आय सेवक और जहाँ नाना प्रकार के वृक्षों पर
लता छा रही थी—विष्णुनाद मुनि भान पहुँच।

सदा सुखलाल और सदा मिश्र की भाषा एक दूसरे से
बहुत कुछ मिलती जुलती है।

इसके बाद वर्ष ६० वर्ष तक हिन्दी की प्रगति रुकी सी
रही। कारण यह हुआ कि अंगरेजों ने अदालत और सरकारी
दफ्तरों में उर्दू भाषा और फारसी लिपि को प्रान्ताहित किया
इससे उर्दू की उन्नति हिन्दी से पहले आरम्भ हो गई। फिर
भी हिन्दी के समर्थकों ने अपना प्रयत्न नहीं छोड़ा। राजा
शिवप्रसाद ने सन् १६०२ में 'बनारस अखबार' निकाला।
इसकी लिपि नागरी और भाषा उर्दू होती थी। इसके पाँच
वर्ष बाद काशी से 'सुधारक' निकला। फिर सन् १६०६ में
आगरा में 'बुद्धिप्रकाश' निकला। इनकी भाषा 'बनारस अख-
बार' की अपेक्षा सुधरी हुई जाती थी।

इन्हीं दिनों आय समाज के पूज्य प्रवक्तक स्वामी दयानन्द
जी भरस्वती (सन् १८७१—१६४०) ने संस्कृत के प्रकाण्ड

हिन्दी गद्य साहित्य

नगरी', 'नील देवी', 'चन्द्रावती' आदि आठ नाटक लिखे। इन्होंने 'काश्मीर कुसुम' और 'बादशाह टपण' आदि कुछ थोड़े से इतिहास ग्रन्थ भी लिखे। इन्होंने न यत्मान हिन्दी गद्य की धाराओं को रुढ़ दिशा में सँवहन करने में राज कर एक राज भाग में लगे रहिये। इनकी भाषा बड़ी परिभाषित प्रभावशालिनी और गँवामयन से रहित होती थी।

इस समय हिन्दी में विहार बन्धु, हिन्दी प्रदीप आनन्द-रादम्बिनी पीयूष प्रवाह और भारत जीवन आदि कई अच्छे पत्र भी निकलने लगे थे। इस के अतिरिक्त लगभग की भी एक बड़ी मण्डली तैयार हो गई थी। उन में से कुछ का नाम ये हैं—बद्रीनारायण चौधरी, प्रतापनारायण मिश्र, तानाराम जी० ए०, जयसिंहसिंह, आनिवास दान, गणेशभट्ट, केशवराम भट्ट और राधाचरण गाल्यामी। इन में श्रीयुत वाजपेयी भट्ट की गद्य शैली भारतेन्दु की शैली से मिलती है। इन की भाषा में कहीं कहीं पैसवाड़ी और पूर्वा हिन्दी के शब्द आते हैं। वे अँगरेजी शब्दों का भी प्रयोग करते थे। इनके लेखों में हास्य की मात्रा भी खूब होती थी। इन्होंने सन् १६३४ में 'हिन्दी प्रदीप' नामक साप्ताहिक पत्र निकाला और 'सौ अज्ञान और एक सुज्ञान' तथा 'नूतन ब्रह्मचारी' नाम के दो छोटे छोटे उपन्यास भी लिखे।

अलीगढ़ के बाबू तोताराम जी० ए० (म० १६०४—१६५६)

के नियमों का पालन करना आवश्यक न समझते थे। उनकी भाषा सदोष और बमुहारा जाती थी। इस दोष का दूर करने का प्रयत्न आचार्य मशहूर प्रसाद द्विवेदी (जन्म मृत १९२१) ने किया। वे सन् १९०३ में 'सरस्वती' के सम्पादक हुए और उन्होंने हिन्दी का गूढ़ भाषा और तत्त्वका की व्याकरण सम्बन्धी भूतों की आलोचना करके उनके ज्ञान खड़े किए। पहले हिन्दी लेखक विराम चिन्हा पर बहुत कम ध्यान दिया गया करते थे। अब अँगरेजी और बंगला आदि दूसरी भाषाओं की दवा दगी इस में भी विराम चिन्हा का प्रयोग होने लगा।

इस समय हिन्दी का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो चुका है। इस में सब विषयों पर दूसरी भाषाओं के अच्छे अच्छे ग्रन्थों का अनुवाद हो चुके हैं और हो रहे हैं। अनुवाद ही नहीं इतिहास, नाटक, उपन्यास, कहानी, आलोचना, यात्रा, विज्ञान आदि के मौलिक ग्रन्थ भी लिखे गये हैं। श्रीपुत्र प्रेमचन्द जी० ए० का नाम और नाटककारों में श्रीपुत्र जयशंकर प्रसाद तथा श्रीपुत्र नारायण प्रसाद वेताय का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस समय सरस्वती, माधुरी, चाँद, सुधा, विश्वामित्र, गंगा युगान्तर, वीणा, और यात्री आदि अनेक उच्च कोटि के सचित्र मासिक पत्र तथा पत्रिकाएँ निकल रही हैं। इन में सब विषयों पर अच्छे अच्छे लेख रहते हैं। बाजका

संख्या	विषय	पृष्ठ
	राजा शिवप्रसाद, "सितारं हिन्द"	
४	श्रीरामजीव की पीज का यग्न श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती	१०
५	सत्यार्थ प्रकाश श्रीयुत गालमकुन्द गुप्त	१३
६	एक दुराशा 'रसूम हिन्द' से	१७
७	मनसुखी और सुन्दरसिंह का क्रिम्सा श्रीयुत बालकृष्ण भट्ट	२२
८	माता का स्नेह श्रीयुत महावीर प्रसाद द्विवेदी	२७
९	पाण्डवों का विवाह	३२
१०	साहित्य की महत्ता	४४
११	विषधर सर्प	४८
१२	नेपोलियन बोनापार्ट / ।	५६
१३	श्रीयुत अयोध्यासिंह उपाध्याय देववाजा की मृत्यु /	६७

हिन्दी गद्य साहित्य

संख्या	विषय	पृष्ठ
	श्रीयुक्त लक्ष्मी रर वाजपयी	
२४	भगवान् बुद्ध का उपदेश और उनकी शिक्षा मद्रासी १६२	
	स्वामी सत्यदेव परित्राजक	
२५	शिकागा का रविगार -	१८१
	श्रीयुक्त प्रेमचन्द जी० ए०	
२६	अमात्या की रात्रि	१६३
	श्रीयुक्त हरदयाल, एम० ए०	
२७	गमायण का महत्त्व	२०६
	श्रीयुक्त रामचन्द्र शुक्ल	
२८	अध्ययन	२२५
	सर्वश्री० बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय और रूपनारायण पारडैय	
२९	मघ	२३८
३०	वृष्टि	२४३
	सर्वश्री० त्रिजेंद्रलाल राय तथा रूपनारायण पारडैय	
३१	राजपूतनी का बरला	२४७

हिन्दी मध्य-शास्त्रिका

संख्या	विषय	पृष्ठ
	श्रीयुत पुराण पाटी	
४०	मध्य शास्त्रिका र खडहरा श्री गुणाड का फल कुँवर नारायण सिंह	३८१
४१	हमीर	३८०
	श्रीयुत हरिवल्लभ जोशी	
४२	हिन्दी साहित्य और मुसततमान कवि सप्तश्री० नरीचन्द्र सेन और सूर्य कुमार वर्मा	३६६
४३	महाभारत	४१२
	डाक्टर लक्ष्मण स्वरूप, एम० ए०	
४४	जमन देश पर एक ऐतिहासिक दृष्टि	४०७
	श्रीयुत पदुमलाल पुन्नालाल उरगी, बी० ए०	
४५	त्रिमूर्ति	४३६
४६	हैनगी फेयर—('वैज्ञानिक जीवनी स')	४५०
	श्रीयुत शालग्राम पराड्या	
४७	आकाश-गङ्गा	४६८
	श्रीयुत कृपानाथ मिश्र, एम० ए०	
४८	बर्लिन	४७८

हिन्दी गद्य-वाङ्मय

एसा राका नम हता । याही तें मव तागन ने याका नाम खडन पाडया हता । सा मरु दिन श्री महाप्रभु जी क सेवक वैष्णवन की मडली मे आया । खटन रान ताग्या । वैष्णवन न रही, जा तेरो शास्त्र क करना हायै तो पडितन क पास जा, हमारी मडली म तर आयये का काम नयी । इनां खडन मडन नहीं है । मगादाता का काम है । भगवदश सुना होय ता इहा आवा । ताहु जाने मानी नहीं । नित्य आयये खडन कर । मस याही प्रकृती इती । फेर एर दिन वैष्णवन को चिस बहुत उदास भया । जर या खटन ब्राह्मण पर मे सुना हता तर चार जने वायु मुन्तर लैके मारन जगे । जर या रही, तुम माहु क्यों मारा हो, तर चार जनेन ने रही तुम भगवदम खटन करो हो । और भगवदम सर्वोपर है । सर्व प्रमन ते श्रष्ठ है । केरत भगवत्परायण है । भगवदपण करया है । तन मन वन जिनने विनया काइ अथ वाकी रदूया नहीं है । सब गिद भय है । मसे प्रमन कु खटन करे है । जासु ताकु मार है । ये सुना खडन ब्राह्मण विन चार जनेन क पावन पडया । और दूसर दिन भागवत-मडली म आयके वैष्णवन के पावन पडयो और वैष्णवन सु रीनती करी क माहु कृपा करके वैष्णव करी और वैष्णवन कुमगलैरे श्रीगोकुल आय के श्रीगुमान जी को सेवक भयो । सो ये खडन ब्राह्मण श्रीगुमान जी की कृपा तें मडन भया ।

—[जो सां वायन वैष्णवकी चारों ५]

हिन्दी गद्य वाटिका

एक दिन बैठ बैठ यह बात यपन यान म =दी कि कोई कहानी ऐसी चाहिए कि निमम हिन्दी भाषा में और हिन्दी वाली ली पुट न मिल नद जाव मग जा हूल की उली - रूप स मिले । बाहर का बाग बाग मगरी कुठ उसर बाच में न हा । यपन मितन उन्ना मम एर फाइ बडे पड निम पराने धुरा, डांग, वृदे गाग एर खटराग लाये । मिर हिलाकर, मुह धुवाकर, नाक भों हें नहाकर आगे फिराकर लग कहन--यह बात होते दिग्वाड नहीं लती । हिन्दीयपन भी न निकन और भाखापन भा न हा । बस जितन भल लाग आपन म बालते गानते हैं ज्यों का त्यां वही सब डाल रहे और छाह हिन्दी की न द, यह नहीं होन का । मैं उनकी ठडी माम का टहाका खाकर खुशला कर कहा-- मैं कुठ एसा बड वाला नहीं जा राड का पत कर दिग्वाऊ और झूठ-सच बाल कर उंगलिया नचाऊँ और वे मिर वे ठिका की उलझी-सुनझी गते पचाऊँ । जो मुनमे न हा मजता तो, यह बात मुह से क्या निमतता ? निस दब से हाना, इस एयेडे का टालता । इस कहानी का कहन गला आप का जताता है और जैसा कुछ उसे लाग पुकारते हैं, वह सुनाता है । दहना दाय मुह पर कर कर आप का जताता है, जो मर दाता ने चाहा ता वह तार भाग और कूद-फाद, और तपट-झपट लिखाऊँ जो देखते ही आपरे ध्यान का घाटा, जा विजली में भी गहन चंचल अच-

३

वर्षा-शरद-ऋतु-वर्णन

लेखक—श्री लालू लाल

[लालू लाल का नाम आगर में मन् १९३३ ई० के जगना हुआ था। आप फीट विलियम कॉलेज, कन्नडा, में अध्यापक थे। वहाँ डाक्टर गिलक्राइस्ट की प्रेरणा में इन्होंने धनभाषा मिश्रित गरीब बोली के गद्य में प्रेम सागर नाम की पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में हिन्दी गद्य का बहुत प्रचार हुआ। इसीलिये इन को जमान गद्य का जन्मदाता कहते हैं, यद्यपि इन से पहले मन् १६३ में जटमल ने गरीब बोली गद्य में गौरा बादल की उदाह लिखी थी। लालूजी गाल ने यथाशक्ति उद्गम को अपन गद्य में ध्यान नहीं दिया। इससे इन के गद्य में एक प्रकार की मृत्तता सी आ गई है।]



औरंगज़ेब की फौज का वर्णन

लेखक—राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द

[राजा माहव का वनम काशी में मन् १८२३ में हुआ था और मन् १८९५ में आपका देहांत हो गया। आप यू० पी० में शिक्षाविभाग के इंस्पेक्टर थे। मित्रव्ययुद्ध में सरकार का साथ देने के कारण आपको राजा तथा सी० आइ० इ० की उपाधियाँ मिली थीं। आप हिन्दी के बहुत प्रेमी थे। आप की भाषा सरल होती थी परन्तु उस में उद् और फारसी के शब्द बहुत रहते थे।]

निदान अत्रजरा औरंगजेब की फौज पर निगाह करनी चाहिये, वारा हमके सदारा के घोडा जो देखना चाहिये। दुम और याले प्रिल्युज रैंगी हुइ, सोने-चादी के गाज मिर से पैर तक लदेहुए,

अथवा स्वयं सत्य या विजय का समर्थ या पराजय और सत्य ही में विजय या मार्ग प्रकाश मिलता है, इस दृष्ट निश्चय के आलम्बन में अथवा प्रकृति के अनुसार ही उपासीत होकर कभी सत्याप प्रकाश करने में नहीं हटत। इस ग्रन्थ में यह अभिप्राय रक्खा गया है कि जो जो सत्य सत्य बातें हैं वे वे सत्य में अविच्छिन्न होंगे व उनका स्वीकार करके जा जो मत-मतान्तरों में मिथ्या बात है उन उन का गण्टन किया है। इस में यह भा अभिप्राय रक्खा है कि जो मत मतान्तरों की गुप्त या प्रकट बुरी बातों का प्रकाश कर विद्वान् अविद्वान् सब साधारण मनुष्यों के सामने रक्खा है, जिसमें सब में सब का विचार होकर परम्पर प्रेमी हो व एक मूल्य मतस्थ हाव। यद्यपि मैं प्रायः दश में उत्पन्न हुआ और उसता हूँ तथापि जैसे इस दश के मत मतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर यथातथ्य प्रकाश करता हूँ मैं ही दूसरे देशस्थ या मतो-न्नति वाला के साथ भी वक्तता हूँ, तथा सब सज्जनों को भी वक्तना योग्य है, क्योंकि मैं भी जो किसी एक का पक्षपाती होता तो जैसा आज राज के स्वमत की स्तुति, मण्डन और प्रचार करते और दूसरे मत की निन्दा, हानि और बन्द करने में तत्पर होते हैं जैसे मैं भी होता, परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपन से बाहर हैं।

[मत्पार्थ प्रकाश से]

हिन्दी-गद्य-गादिना

बाहमुकुन्द जी की गैली का मुहान अधिकतर शुद्ध हिन्दी की ओर है राजा निवप्रसाद की तरह उस में उद्गृहणों का भरमार नहीं। साधारणतः उन की भाषा में एक प्रकार की पैनीपार भी होती है।]

नागमी क रस में जाकरानी वृत्तनी हठी छान कर शिव-शम्भु शन्मा नदिया पर पड़े मौनों का मानन्द ल रहे थे। सुपान्ती धोड़े की बागे डीनी करदी थी। यह मनमानी जकन्दे भर रहा था। हाव-भावों का भी म्वाधीनता दी गई थी। यह नदिया के नुर बरुड मीना जन्मन करके इधर-उधर निकल गये थे। कुतु देर इमी प्रका शनों जी का शरीर नदिया पर था और नमान इन्तये दुनिया म। प्रचानक एक सुरीली गाने की आवाज ने चौंका दिया। कन-रसिया शिवशम्भु नदिया पर उठ बैठे। कान गग कर सुनने लगे। कानों में यह नुर नील बरुड शब्द दाडंर गा—

प्रतिनिधि बना कर प्रचलानिया का गोप दन के लिये
 ब्रज में भेजा है। क्या उस राजप्रतिनिधि के घर जाकर शिव
 शम्भु होली नहीं गेना सकता? ओह! यह विचार वैसे ही
 बेतुफा है जैसे प्रभा राती में होनी गई जाती थी। पर इसमें
 गाने जाने का क्या तोप है? यह तो समय समझ कर ही गा
 रहा था। यदि यमन्त में राती की क्षुडो लगे तो गाने जाने का
 क्या मन्नार गाना चाहिये? सचमुच उडी कठिन समस्या है।
 कृष्ण हैं, उद्धव हैं, पर ब्रजवासी उनक निकट भी नहीं फटकने
 पाते। सूर्य है, धूप नहीं। चन्द्र है, चाँदनी नहीं। माइ लाड
 नगर ही में हैं पर शिवशम्भु उनके द्वार तक नहीं फटक सकता
 है, उनके घर चल कर होली गेलना तो विचार ही दूसरा है।
 माइ लाड के घर तक रात की हवा नहीं पहुँच सकती? जहागीर की
 भाँति उसने अपने शयनागार तक ऐसा कोई घटा
 नहीं लगाया जिसकी जगीर गहर से हिलाकर प्रजा अपनी
 परयाद उन्हें सुना सके। उसका दर्शन दुर्लभ है। द्वितीया के
 चन्द्र की भाँति कभी कभी बहुत देर तक नजर गडाने से
 उसका चन्द्रानन दिख जाता है तो दिख जाता है। लोग
 उँगलिया से इशारे करते हैं कि वह है। किन्तु दूज के चाँद के
 उदय का भी एक समय है। लोग उसे जान सकते हैं। माइ
 लाड के मुखचन्द्र के उदय के लिये कोई समय भी नियत नहीं।

मनसुखी और सुन्दर सिंह का किस्सा

[इस लेख के लेखक का नाम मालूम नहीं । इसकी भाषा मेरठ और दिल्ली निल के देहात की है । ग्रामों की स्वाभाविक बोली ढान से इस में मिठास खूब है ।]

एक दफ़े बहार के मौसम में जब कि जाड़ा बीत गया और जङ्गल में तरह-तरह के बेल-बूटे और रंग-रंग के फूल खिलने लगे, अहीरपुर गाँव में सीतला का बड़ा मेला हुआ । वहाँ की तमाम औरतें और मर्द हाथों में पुजापा लिए अपने-अपने घरों से बाहर निकले । रस्ते में सम-चयस्क लडकियाँ आपस में हँसती-बोलती सीतला के सुहँल गाती जाती थीं । इन में एक अहीर की लडकी, जिसका नाम मनसुखी था, अपने चचा सुजानसिंह नम्बरदार और चची सुन्दरकौर के साथ घर से

हिन्दी-गद्य-वाटिका

भगत कहा करे हूँ, जैसी पहल करें । फिर पापा ने पुछा—
मनसुखी, तेर चाचा-चाचा किस कारण माता ने +जात देने
आए हैं ? उसने कहा—तुझ उमर नहीं ? ज्य मेरे भाई के
माता निकला और तारा दू म कहीं तिन रखने को जगह न
रही थीर जल वनि की आस जाती रही, उस समय मरी
चाची ने † पतहूँड तक माता से ‡अरदास करत कहा था कि
माता रानी, अपन गुलाम पर दया कर ! जय यह पांच बरस
का होगा, मे तरी जात दूँगी, और तेर नाम पर पत्र बछड़ा
छाडूँगी, और भगत को जाडा पहनाऊँगी । सा अब मरा माहन
भाइ पाच बरस का हा गया है । इसलिये हम जात देने आए हैं ।

ये बातें इन लडकियां में ही ही रहीं थीं कि इतन में सारे
सब सीतला के मन्दिर के पास था पहुँचें । मनसुखी पायती
से जुदा होकर अपना चाची के साथ हो ली और अपन भाई
मोहन का गोद में लकर मन्दिर के भीतर गई । क्या देखती है
कि वही एक पीतल की मूर्ति पूज और हारा से लदी हुई
रखी है । मनसुखी के चाचा ने अपनी माया से कहा—ले मोहन
का मा, पुजापा निकाल और छारे के हाथ से छुआ के
महारानी पर घटा द और भगत जी को जोडा पहना दे, और
बछड़े को छोड़ दे ।

* भेंट । † ठकियों की घड़ीजो । ‡ विनय ।

को खाना खिना रही थी। मनातर्पण । अपनी स्त्री से मनसुखी के गाने का जिक्र किया और कहा—मोहन की माँ, मनसुखी का बन्दा एक मन्त्र पाके प्रायगा और यह यहीं रहेगा। उसका ब्रह्मण्ड कहा—सामने ही कोठरी माली कर दूँगी। गाने का गीतारा बामान धरा है। थोड़ी देर तक उसमें यहाँ गाय होती रही। फिर मनसुखी और मोहन भीतर के दालान में अपनी खाट बिछा कर सो गये। राह के दालान में चन्द्रकौर अपने छोटे बेटे को लेकर लेट गई और सुजानसिंह इसी दालान की कोठरी में जा पड़ा।

—["रसूम हिन्द" से]



किन्तु अतः एक विद्वान् न गिला ह कि मरा मो क गार-गार
 मुझ चूमन न मुय शिखरा म प्रगल्भ न द्विया । गुण पितना
 पाठशाला म अथ शीत न ता शिखरा कर मषों मं शिखरा
 सक्तता है उतना अपन प्र म न डय मो के अश्रिम सहज गन्त
 मे एक दिन म माय ता न । मा के ग्याभायिक, सचने और
 अश्रिम प्रेम का प्रमाण इसमें यह कर और क्या मित सकता
 होय लक्ष्मी शिखरा ही राता अथवा मुझाया हुआ हा, मा फी
 गाद म जात ही चुप हा जाता है और जहा धार्डी दर तर न डय
 ने दूध न पिया मो के स्तन भर आत है, दूध टपकन लगता है
 और यह मित हो जाती हैं । दस माय तक गभ म धारण
 करन का फलश, जनन के समय की पीडा, उमरे पालन
 पोषण की चिन्ता, उमे नीराग और प्रसन्न दग् कर चित्त का
 हुलास, रागी तथा अनमन देय अत्यन्त बिकल होना इत्यादि
 सब माता ही मे पाया जाता है । जडरा कुपूत और निकम्मा
 निकल जाय ता बाप उसका माय नहीं देता, यह उसे घर मे
 निफाल अलग कर देता है, पर मा बहुधा पति को भी त्याग
 कर निकम्मे पुत्र का माय देती है । दो चार नहीं वरन् हजारों
 ऐसी मातायें देवी गन् हैं जिन्होंने शलक की अत्यन्त कोमल
 अस्थि ही में पिता के न रहने पर चक्की पीस पीस कर अपने
 पुत्र को पाला और उसे पढा लिखा कर सब भाँति समथ और
 योग्य कर दिया । पुत्र भी ऐसे मुयोग्य हुए हैं कि सब भाँति भर-

हिन्दी गद्य-शास्त्रिका

मा अपनी प्रिय सन्तान के लिए कितना कष्ट सहती है जिसको सम्भरण कर पित्त में उत्पन्न भय का उद्गार हा जाता है। माता के रक्त में पिता के समाप्त प्रत्युपकार को वासना भी नहीं है। दया माना वह धरे सामा आकर खड़ी हो जाती है। दूरी पुरुष का आपदा में अथ मूसलाधार पानी बरस रहा है, पूस का आकर प्रार से ऐसा टपकता है कि कहीं तिल भर भी गणना नया पचो है, न कद्दाजी के कारण इतना कपडा-जता पाव है कि आप छोटे और प्रिय सन्तान का हाँप कर वृष्टि से बचावे, ऐसे समय में माधी जाती स अपन दुध-मुँहे बालक को हाँपे माता उसको छाती में लगाये हुए है। अपने प्राण और देह की तनिक भी चिन्ता नहीं है, किन्तु यात और वृष्टि से पुत्र का काँई अनिष्ट न हो, इसलिये वह अत्यन्त व्यग्र हो रही है। पुत्र की रोगी और अस्वस्थ दशा में पलङ्ग के पास उदास पैठी मन मारे उसका मुँह ताक रही है। रात की नींद दिन का भोजन दुस्तर हो गया है। भौंति भौंति की मिश्रतें मानती है। जो कोइ कुछ कहता है वह सब कुछ करती जाती है। अपनी जान तक चाहे चली जाय पर पुत्र को स्वास्थ्य लाभ हो। पिता को अपन शरीर पर इतना कष्ट उठाना कभी न चावेगा। यह माता ही है जो पुत्र के संभावित स्नेह के बश हो इतने-इतने दुःख सहती है। बुद्धिमानों ने इन्हीं सब बातों को सोच विचार कर लिख दिया है कि पिता से मा का गौरव सौ गुना अधिक

पाण्डवों का विवाह

लेखक—श्रीयुत महावीर प्रसाद द्विवेदी

[श्री द्विवेदी जी का जन्म मन् १/६४ ईसवी में रायबरेली जिले के दौलतपुर नामक गाँव में हुआ था। आप पहले तार विभाग में नौकर थे। फिर नौकरी छोड़ कर आप हिन्दी साहित्य की सेवा में लग गए। आपने प्रयाग की सुप्रसिद्ध हिन्दी पत्रिका, सरस्वती, का लगभग द्वाय वर्ष तक सफलतापूर्वक सम्पादन किया। आप हिन्दी के आचार्य माने जाते हैं। आपकी भाषा बड़ी परिमार्जित और जोरदार होती है। आप सदा सरल और छोटे वाक्य लिखते हैं। आपने सस्कृत तथा अंगरेजी के कई उत्तमोत्तम ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद किया है। आपने ३० से ऊपर ग्रन्थ लिखे हैं।-अम्बरधर रहने के कारण अब आपने लिखना छोड़ रक्खा है।]

इस इरादे से उन्हें ने एक पत्ता चुना जहाँ राजा या जिन पर प्रपञ्चा बड़ा कर चुकाता था रहते पाम था। उन्हें ने एक आकाश-यन्त्र भी तैयार कराया था। यह यन्त्र अधर में लटका हुआ हिंसा प्रस्ता था। उन्हा यन्त्र में, बहुत ऊँचाई पर, एक निशाना लटकाया गया था। यह सब करके राजा द्रुपद ने मुनादी करा दी कि जिजाऊ इस अनुप का तान कर पाच ही गण्डा में हिंसा-यन्त्र के उद्‌के भीतर से निशाना मार सकेगा, उसी का मैं सन्यादा दूँगा।

इस के लिये नगर में मिली हुई एक साफ चौरस जमीन पर स्वयम्बर-रथान बनाया गया। सभा स्थल के चारों ओर दीवार बनाई गई और स्वाध्याया म्वादी गई। फिर उस में जगह जगह पर द्वार बनाये गये। रङ्गभूमि में चारों तरफ दूर-दूर समान शुभ्र राजमण्डप, मणिया से जड़ी हुई उनकी छत और ग्रांगन, बराबर-बराबर जगह पर रने हुए एक ही तरह के सब दरवाजे, मनोहर सीढिया और विचित्र पुष्पा की मालायाँ से शोभित चँदोवे आदि अर्पू शोभा धारण किये हुए थे।

राजा द्रुपद के प्रण को सुन कर चारों तरफ से राजा लोग आने लग। ऋषी के साथ दुर्याधिन आदि कुरु लोग, तथा उलदेव और कृष्ण आदि पादव लोग भी आये। अनेक स्थानों से ऋषि और ब्राह्मण लोग उत्सव देखने के लिये आये। राजा द्रुपद ने सब का यथोचित सत्कार किया और स्वयम्बर का दिन

“हे उपरिष्ठत नन्दा नग ! व्याप नाग श्राण्ण गजिये । यह अनुप प्राण प्रौं निगाना हूँ । जा न्म आकाश वन्त्र के शीघ्र-शीघ्र के सुगरभ मे पाच गगन नाग कर निशाना मार सवेगा, उमी का हगारा ७ । न्थमाता पहगावगी ।”

उसी व र ना नाग की सुन्दरिया म श्रेष्ठ द्रौपदी के वशत र गी। हुए राजा लाग एक दूसरे को जीतने की इच्छा मे ना यपन यासनों से उठे । सभा क सत्र लाग द्रौपदी की न क टकटकी लगा कर रह गये ।

उसी समय बुद्धिमान् कृष्ण ने इधर-उधर देखते देखते साधारण आदिमिया के बीच में माहृण वज्रधारी पांच तेजस्वी पुत्रों को देखा । इससे उनका ध्यान महसा उसी ओर खिंच गया । कुछ देर सोच कर उन्हो ने अपने गाल मित्र यर्जुन का अच्छी तरह पहचान लिया और प्रलदेव को भी उधर देखने के लिए इशारा किया । प्रलदेव ने भी कृष्ण क अनुमान को सच समझा । तत्र कृष्ण और प्रलदेव दोनों को विश्वास हो गया कि पाण्डव लोग लाक्षागृह में जतन से रच गय है ।

परन्तु और राजकुमारों के प्राण तो द्रौपदी पर निछावर हो चुके थे । उन्हें किसी दूसरी तरफ ध्यान देने की पुरसत नहीं । ये ईर्ष्या और दुराशा के कारण अपने-अपने होंठ मट रहे थे और चञ्चल चित्त मे इधर उधर घूम कर एक दूसरे के निशाना

गिया। एसा करते देख जित्त राजारी और पगाम्भी राजाओं के हजार चलाए। पर भा अजुन न उठा वा, उन्हें बडी लज्जा माखूम ह। अजुन न नृप राजा तान कर डाट उम पर प्रत्यग्वा चढा दी और नृप राजा के छेद क पांच से पांच गाय मार कर निशाना लगा पर गिरा दिया।

२-। हज्जचल मच गई। देवता लाग अजुन क ऊपर पूल परगाना लगे। हजारों ब्राह्मण अपन मृगचर्म और उत्तरीय हिला हिला कर बडी खुशी प्राप्त करने लगे। बाजे वालों ने तुरही गजागा और सूत मागधों ने मधुर कण्ठ से स्तुति-पाठ करना आरम्भ किया।

द्रौपदी ने अजुन की अतुल कान्ति को देख कर सुशी के साथ उनके गले में जयमाला पहना दी। राजा द्रुपद भी अजुन के अद्भुत रत्न और पुरतीलेपन से प्रसन्न हो कर कन्यादान करने की तैयारी में लगे।

द्रुपद को इस ब्राह्मण कुमार के हाथों में कन्यादान देने के लिए तैयार देख कर आये हुए राजा लोगों को बडा क्रोध हो आया। वे एक दूसरे के मुह की तरफ देख कर कहने लगे—

“राजा द्रुपद ने हम लोगों का निरादर किया। हम लोगों का बडा अपमान हुआ। देवताओं के समान राजाओं में इन्होंने किसी को अपनी कन्या देने योग्य न समझा। ब्राह्मणों को

फी पेसी नेत्र शक्ति का तब पर परा आश्रय में आगम।
उन्होंने कहा -

‘हे ताक्ष !। पुत्रागमन स्वरूप चाने में तुम्हारी योग्यता और अस्मत्परी की मजबूती दृष्ट कर हम उड़े पसय ल। अतः जाता है कि तुम साक्षात् धनुर्बद्ध हो। हमें कोण अनेक सुदृष्ट या कुन्ती क पुत्र अजुन वा छोडकर हाग का भी सामना नहीं कर सकता।’

अजुन ने उत्तर दिया—

“हम न तो धनुर्बद्ध हैं, न इन्द्र किन्तु अस्त्र विद्या जानन वाले एक ब्राह्मण हैं। तुम को हराने व पिण लडाई के मैदान में आये हैं।”

इस बात के सुनते ही अजुन ब्रह्म-नेत्र की श्रेष्ठता रवीशर की और सुदृष्ट से पीछा छुडाया। इधर शक्य और भीम ने धूम्राँ और ठोकरों के द्वारा और भी वेदत्र लडाई होने लगी। अन्त में भीम ने एक पेसी उखाड मारी कि शक्य जमीन पर चारों खाने चित्त गिरे। इस से ब्राह्मण लोग मारे हँसी के लाट पोड हो गये। शक्य ने भी लज्जित हो कर हार मानी। यह देख कर बाकी राजा लोग डर गये। वे आपस में रात चीत करन लगे—

“ब्राह्मण कुमार कौन हैं ? वे किस क पुत्र हैं और कहाँ के रहने वाले हैं ? यह जानना जरूरी है।”

साहित्य की महत्ता

ज्ञान राशि के सञ्चिन्त कोश ही का नाम साहित्य है। सत्य तर्क के भागों का प्रकट करने की योग्यता रखने वाली और निर्दोष होने पर भी यदि कोई भाषा अपनी निज का साहित्य नहीं रखती तो वह, रूपयती मिखारिनी की तरह, रुदापि आदरणीय नहीं हो सकती। उसकी शोभा, उसकी श्रीसम्पत्ता, उसकी मान मयादा, उसके साहित्य पर ही अवलम्बित रहती है। जाति-विशेष के उत्कृष्टपापक का, उसके ऊँच-नीच भवों का, उसके धार्मिक विचारों और सामाजिक समूहों का, उसके ऐतिहासिक घटना-चक्रों और राजनैतिक स्थितियों का प्रतिचित्र देखने को यदि कहीं मिल सकता है तो

और कालान्तर में निर्जीव सा गीत का जानना चाहते तो हमें साहित्य का सतत संपर्क करना चाहिए और उसमें नवीनता तथा पौष्टिकता लाने के लिए प्रसन्न उत्पादन भी करते जाना चाहिए। परन्तु इस विद्वत् भाजन में जैसे शरीर रुग्ण होकर चिन्मय हो जाता है वैसे विकृत साहित्य से मस्तिष्क भी विकृत होकर रागी हो जाता है। मस्तिष्क का बल गाय जाकर शक्तिवम्पन होना अच्छे ही साहित्य पर अवलम्बित है। अतएव यह बात निभान्त है कि मस्तिष्क के यथेष्ट विकास का एक मात्र साधन अच्छा साहित्य है। यदि हमें जीवित रहना है और सभ्यता की लौंड में अन्य जातियों की परावरी करना है तो हमें श्रमपूरक, बड़े उत्साह से, सत्साहित्य का उत्पादन और प्राचीन साहित्य की रक्षा करनी चाहिये और यदि हम अपने मानसिक जीवन की हत्या करके अपनी वर्तमान दयनीय दशा में पड़ा रहता ही अच्छा समझते हों तो आज ही इस साहित्य तन्मयन के आडम्बर का विसर्जन कर डालना चाहिये।

आख उठाकर जरा और देशों तथा और जातियों की ओर ता देखिए। आप देखेंगे कि साहित्य ने वहाँ की सामाजिक और राजकीय स्थितियों में कैसे-कैसे परिवर्तन कर डाले हैं। साहित्य ही ने वहाँ समाज की दशा कुछ की कुछ कर दी है; शासन प्रबन्ध में बड़े-बड़े उथल-पुथल कर डाले हैं; यहाँ तक कि अनुदार धार्मिक भावों को भी जड़ से उखाड़ फेंका है।

११

विषधर सर्प

सृष्टि में सरयातीत पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग और पेढ पाँधे पाये जाते हैं। उनमें से किसी एक का भी सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना मनुष्य की मसीम शक्ति के गहर की बात है। विद्वानों ने पता लगाया है कि जिन नैसर्गिक नियमों के अनुसार मनुष्य अपना जीवन धारण करता है, अधिकांश उन्हीं नियमों के अनुसार अन्य प्राणी भी जीते और जीवन-धर्म्या चरितार्थ करते हैं। आचार्य्य वसु न तो इस बात तक के निभ्रान्त प्रमाण दिये हैं कि जीव जन्तु ही नहीं, उद्भिज्ज तक में वही चेतन-शक्ति अपना काम कर रही है जो मनुष्या, पशु पक्षियों और कीट पतङ्गा में विद्यमान रहती है। उस ज्ञानमय परमात्मा की

हम दृष्टि के बिना गीता १०० - १०० जन्तु के विषय में ज्ञान सम्पान करने का उपाय है। ऐसे ज्ञान-सम्पादन के लिए हमें ज्ञान प्राप्त करना है। लिखित और वेदों के बिना, हमें ज्ञान प्राप्त करना उदाहरण समाप्त। पर हमें ज्ञान प्राप्त करने के लिए खोज और श्रम आवश्यक है। अपना श्रम क कुठ नहीं मिलता। अज्ञान भी मुँह में नहीं जाता। वेद है, हम ज्ञान श्रम से बहुत डरते हैं; खोज से दूर भागते हैं। यदि हम ज्ञान साधारण चिड़िया घर के आगन में पड़ने वाले गिरिया का भी कुछ ज्ञान जानना होता है तो अतः हम नैचुरल हिस्ट्री के दैग की काइ अंगरजी पुस्तक खूँटने बीडते हैं और उस की तकल करके समाचार-पत्रों और सामयिक पुस्तकों के लिए लेख तैयार करते हैं। मामूली कौशे का हाल सुद देख भाल करके नहीं लिखने, अंगरजी "जैकडा" के यणन की कापी करके सुलेखक बन बैठने की तार में रहते हैं।

भारत में अनेक प्रकार के सर्प पाए जाते हैं। पर आज तक किसी ने भी उन सर्पों का ज्ञान प्राप्त करने का पुस्तक नहीं लिखी। परन्तु सात समुद्र पार रहने वाले अंगरेज, जो यहाँ कुछ ही समय के लिए आते हैं, सर्पों का पालते, उनकी परीक्षा करते, उनकी जीवन-चर्या का ज्ञान प्राप्त करते और फिर बड़ी-बड़ी पुस्तकें और बड़े-बड़े लेख लिखते हैं। ऐसे ही

हिन्दी-भाषा-शास्त्र

को नागा में से एक जाति बहुत बड़ी होती है। उसे नागराज (Naga Raja) कहा जाता है। उसकी डाढ़ा में रज ही तब्र विप रचना है। यह साप बहुत लम्बा होता है। रम्बई के अजायब में एक साँप है जिसकी लम्बाई १५ फुट ५ इंच है। ये साप बिना छंदे भी मनुष्य पर आक्रमण करते हैं, विशेष करके इनकी मादी। जिस समय शत जाति की नागिन अण्डे रखती हैं उस समय वह जरा सी ग्राहट पाने पर भी काटी दौड़ती है। उस समय उसकी हिंसक वृत्ति बहुत बढ़ जाती है। कुपित हान पर यह साँप जब तक कर खड़ा हो जाता है तब इसके शरीर के उत्थित अंश की उँचाई मनुष्य के कद के बराबर पहुँच जाती है। उस समय इनकी कोप-कराल फणों को देख और फुटकार को सुन कर अत्यन्त साहसी मनुष्य का भी हृदय दहल उठता है। इस जाति के साँप अपने ही भाई बन्धुओं को अपना भक्ष्य मनाते हैं। विपधर हो अथवा निर्मिप सामने आ जाने पर किसी का नहीं छोड़ते। एक दफे एक नागराज ६ फुट लम्बा एक अजगर निगल गया था। इस प्रकार के साँप सिर्फ घों जङ्गल में पाये जाते हैं।

साधारण जाति के काल साँप प्रचुरता से मात्र ही पाये जाते हैं। इनमें भी कई उपभेद हैं। किसी के फन पर कुण्डलाकार घेरा सा होता है, जिसे गापड़ (गासुर) कहते हैं। किसी में यह घेरा कुछ लम्बा हाता है और किसी में हाता ही नहीं।

के फल के साथ विद्रुता - ह नाप मयन शरीर की कुण्डली जाकर रूठ गया । शरीर का कुण्डलियों का आपस में हल नाप रूठना ही एक राट का कारण अपूर्ण ध्वनि निकलना -

विषक २१ - ५ मिर म एक छोटा सा शंकी रहती है । उसी मिर का रगता है । यह रैता गाम्ब क पीछ मांस के भीतर जात है । काटते समय दबाय पडने से रैती का मुँह खुल जाता है और विष निकल पडता है । यह विष एक तन्तुमय नाली से यह कर डाढा में पहुँचता है । ये डाढ किसी किसी जाति क साप क जबड़े क पाछ और किसी किसी क आगे रहती हैं । डाढा में छेद सा रहता है और काटते समय विष काटी हुई जगह में टपक पडता है ।

सर्प विष का प्रभाव दूर करन के लिय आज तक अनेक औषधियाँ तैयार हुई हैं । पर पूरी सफलता किसी से भी नहीं हुई । सर्प विष से ही डाक्टरों ने कुछ औषधियाँ तैयार की हैं । पिचकारी से ये शरीर के भीतर पहुँचाई जाती हैं । पर जिस प्रकार के सर्प क विष से ये औषधियाँ बनती हैं उसी प्रकार के सपदश को ये लाभ पहुँचा सकती हैं, औरों को नहीं । सपदश की सब से अच्छी दवा यह है कि साँप काटते ही उस जगह को तेज चाकू से काट दें । फिर उससे जितना रून निकल सके दवा कर निकाल दें । उस जगह को गरम लोहे से दाग भी दें ।

१२

नेपोलियन बोनापार्ट

योरप के इतिहास में नेपोलियन एक अद्वितीय और प्रतिभाशाली महापुरुष हो गया है। अपनी वीरता, साहस और बुद्धिमत्ता से वह साधारण स्थिति से फ्रांस का सम्राट् हो गया और योरप के सारे देशों में उस ने अपनी धाक जमा ली। फ्रांस के छोटे से देश में उसने साम्राज्य में परिणत कर दिया और उसकी कीर्ति बढ़ा कर उसे योरप के देशों में अग्रगण्य बना दिया।

नेपोलियन बोनापार्ट का जन्म कार्सिका नामक टापू में, जो इटली के दक्षिण में है, सन् १७६९ ई० में हुआ था। कार्सिका के निवासियों का जीवन विचित्र था। उनमें परस्पर इतना द्वेष था

न मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की जाती है। यह समझना भूल होगी कि यह बकवास है। यह वास्तविक कुशलता और दूरदर्शी है। यह सिद्ध नहीं है जो उसने फ्रांस में किया है।

न केवल यह समझना ही नहीं है कि पूर्व फ्रांस में एक महान् राष्ट्रीय विद्रोह हुआ था, जिम्मे दश की स्थिति ही बदल दी। और यद्यपि सारा दशा में हल मत मया दी थी। इस राज्य विद्रोह के बाद यह फ्रांस का अग्रिष्ठाना बना और शासन का कार्य उसने अपने हाथ में लिया। राष्ट्र विद्रोह के समय फ्रांस में बड़े परिवर्तन हुए। इसका के प्राचीन अधिकार जो माध्यमिक काल से चल आते थे, छीन लिये गए थे। स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृ भाव ये ही राज्य क्रान्ति के मूल मन्त्र थे और इन्हीं की विजय के लिए फ्रांस के लोगों ने असह्य यातनाएँ सहनी थीं और अज्ञानता-वश अपने ही देश भाइयाँ पर अनेक अत्याचार किए थे। इस आपत्ति के समय बड़े बड़े भीषण दृश्य देखने में आए। हजारों निर्दोष स्त्री पुरुषों के प्राण गए और प्राचीन सस्थाएँ नष्ट हो गईं। प्रजा-तन्त्र राज्य स्थापित हुआ गया और जिन रजमों और विद्वानों ने इसका विरोध किया, उन्हें फाँसी का दण्ड दिया गया। इसाई धर्म की अवहेतना और निन्दा की गई। नए मन प्रचलित किए गए और प्राचीन धर्मानुयायी पादरियों की सम्पत्ति छीन ली गई।

श्रास निम्न गयी थी। मजदूरी - श्रम नहीं था। आर्थिक दशा हीन थी। जन कर्मज नहीं था। मजदूर कर्मचार्य शक्तिहीन होगये। पत्रकार शक्तिहीन श्रास प्रत्येक नागरिक का जीवन बर्बाद कर रहा था। शिक्षा व्यापारियों ने इस श्रास का - श्रास सर्जिता के द्वारा व्यापार बन्द कर दिया था। श्रास बड़े का नाश हुआ था। किसी विभाग - श्रास, दक्षता और सजाइ से काम नहीं होता था। श्रास रडसा कपडयन्ना का राजना, श्रास विहीन राष्ट्रीय दला क अगन्ताप को दूर करना, सम्पत्ति हीन लुट हुण पादरि यों के हृदय की बधकती हुण श्रास का मुझाग—ये सब कठिन समस्यारुँ फ्रांस क नए शासक के सम्मुख उपस्थित थीं।

नपोलियन ने शीघ्र ही उत्साह पूरक अपना कार्य आरम्भ किया। शारीरिक अथवा मानसिक परिश्रम करने में कोई उसकी बराबरी नहीं कर सकता था। कभी कभी तो वह रात दिन काम करने में लगा रहता था और अनिश्चित परिश्रम करने पर भी नहीं बकता था। छोटी छोटी बातों को भी वह स्वयं देखता था, और राज्य का कोई काम ऐसा नहीं था, जो उसकी सम्मति बिना होता हो। उसने यह समझ लिया था कि फ्रांस में दृढ और मगठित शासन की आवश्यकता है। इसीलिए उसने पुतिस को विशेष अधिकार दिया, और व्यक्तिगत रघतन्त्रता पहले की अपेक्षा बहुत कम कर दी। समाचार पत्रों

हिन्दी गद्य साहित्य

थी जब कि राष्ट्रीय सम्मान दूर हो गई थी और स्वतन्त्रता की पुकार मचाने वाले गणनी साधकपत्ता से परतन्त्रता की प्रवृत्त पककी कर रह थे । असन्तुष्टां का सन्तुष्ट करता, निराशों का आशा दिलाना, जन-भा गारण व गृहस्थां की रक्षा करना और जनकी उन्नति का सा जन शिवालना सरल नाम नहीं था । नेपोलियन ने अपना बुद्धिमत्ता से इस महा भठिन काय का सम्यादन किया और इसी कारण उसका नाम समार व इतिहास में सदा धमर रहेगा ।



जाना है, चाय के ना प्रवनी ठारा खड्ड है, उनकी हरियाली
 रसा हां है, प्रयार लगने पर उनक पत्ते रस ही धीर वीरि
 चिन्ने है, चिलिया रेमा २। जाल रही हैं, रात में चांद रसा ही
 निरुला, धरती पर चादनी रसी ही छिट्ठी, तारे रस ही
 निकल, सब तुट रसा ही है। जान पडता है देववाला मरी
 नहीं। धरती सब रसी ही है, पर देववाला मर गइ। धरती के
 जिये देववाला ना मरना जीना वानों एक ता है। धरती क्या
 गाव म चहल पहल रसी ही है। हंसना, गलना, गाना,
 बजाना, उठना, बैठना, खाना, पीना, ग्राना, जाना सब रसा ही
 है। देववाला के मरने से कुछ घटी क लिए दो एक जन का
 कलजा कुछ दुखा वा, पर अब उनका देववाला की सुरत तक
 नहीं है। वह भी देववाला का भूल गये। हाँ। अब तक एक
 कलेजे मे दु ख री आग जल रही है। अब तक एक जन की
 आँखा म आँसू बहता है, वह देववाला क लिय वापला उन रहा
 है। वह दूसरा ना नहीं रमाना है। पीछे किरिया करम का
 झमला हुआ, दूसर नाम वान का झड्ड हुआ। रमानाथ को ही
 यह सब तुट समहालना पडा। धीरे धीर उसका दु ख भी
 घटने लगा, धीर वीर वह भी देववाला का भूत रहा है। एक
 एक करक दिन जान लगे। देववाला जो मरे क दिन हा गये,
 पर देवनन्दन अब तब नहीं भूते हैं। अब तक वह लडकपन री
 हंसती गेलती देववाला, अब तक वह ग्याह के पहले की बिना

हमी केत दानन्दन न मुना जेम मिसी न कता "ही हागा" ।
 उन्होनें आख उठा कर दगा, आगाग म गक जोत मामा उग
 रती चली आता है और उमा म उग जेम कोई रह रहा है,
 "ही हागा" । दानन्दन फिर हाकर उम फो देगने लगा । उसी
 म फिर यह बात सुन पडी, क्या तुम मुझका जानते हो ? मरा
 नाम आता है ? मर मना धरता न काइ काम नहीं चल
 सकता, मैं तुमका प्रत जाती हूँ । जतन करो, जतन करो मैं सब
 कुछ हागा । दानन्दन न बहुत मिनता क साथ कहा, अब तक
 हागा, मा ? फिर यह बात सुनन म आइ कि जतन करने वाले
 म अब तक की बात मुँह पर न जाना चाहिए । जब तक उस
 का काम न हो तब तक उमे जतन करत रहना चाहिए । देव
 नन्दन ने देखा, इतनी बात क कता क पीछ रह जोत फिर
 आँखों स ओझल हा गई । दानन्दन अब तक जीते रहेंगे और
 किस किम ढंग से उन्हाने देस की पुरी चाला को दूर करने
 के लिए जतन किया, कैसे कैसे खाटी छुटा कर अपने दश
 भाइया का भला करना चाहा, इन मय बातोंको यही उठाने का
 काम नहीं है । पर जब तक क जीत रह, उनका यह काम था ।
 कुछ दिनों रमानाव भी उसका साथी हा गया था ।

बहुत दिन तक लोगा न दानन्दन का दूसरा की भलाइ के
 लिए घूमते दखा था, पर पीछे उनको भी वरती छोडनी पडी ।
 जिस दिन उन्हान धरती छोडी, उस दिन चारों ओर से लोगों
 को यह बात सुन पडी थी "क्या फिर कोई दानन्दन जैसा
 भाइ म लाल न जन्मगा ?" — [२७ हिन्दी का ठाठ से]

मनुष्य की प्रिया, बुद्धि और स्वभाव का पता उसकी वात-चीत में लग जाता है, इसलिए उस अपने विचार प्रकट करने के लिए वातचीत में उदात्तसाधनी रखता चाहिए। सम्भाषण में सावधान का आवश्यकता इसलिए भा है कि बहुतों वात ही वात में उभर उठ आती है। यथाथ म मनुष्य की वातगीत ही उसके कार्या की सफलता अथवा असफलता का कारण होती है। किन्ना कवि ने कहा है—'रुहें कृपाराम सब सीखियो निकाम एक थालिया न सीखो सब सीखो गयो धूल में।' जिसकी वातचीत में सम्भ्यता या शिष्टाचार का अभाव रहता है उसमें लोग वातचीत करना नहीं चाहते।

सम्भाषण करते समय श्रोता की मर्यादा के अनुरूप 'तुम', 'आप' अथवा 'श्रीमान्' का उपयोग करना चाहिए। इनमें 'आप' शब्द इतना व्यापक है कि यह 'तुम' और 'श्रीमान्' का भी स्थान ग्रहण कर सकता है। 'तुम' का उपयोग अत्यन्त साधारण स्थिति के लोगों के लिए या अधिक घनिष्ठ परिचय वाले समवयस्क के लिए और 'श्रीमान्' का उपयोग अत्यन्त प्रतिष्ठित महानुभावों के लिए किया जाय। बहुत ही छोटे लडकों को छोड़ कर और किसी के लिए 'तु' का उपयोग करना उचित नहीं। किसी के प्रश्न का उत्तर देने में 'हाँ' या 'नहीं' के लिए केवल सिर हिलाना असम्भ्यता है। उसके बदले "जी हाँ" या "जी नहीं" कहने की बड़ी आवश्यकता है। वातचीत

वातचीत में आन्ध्र प्रशम्भा को यग मन्मथ दूर रखना चाहिए। साथ ही मानचीत का टङ्ग भी ऐसा न हो कि श्राता को उसमें अपना अपमान की झलक दिखाइ दे। वातचीत में विनोद रस का आनन्द ताता है, परन्तु मदैय हँसी ठूटा करन की टेर रस और श्राता हानों के लिंग हानिभारक है। सम्भा पण म उपमा और रूपक का प्रयोग भी उड़ी साश्वानी से किया जाय, क्योंकि इसमें उहुधा अथ का अनय हा जानें का डर रहता है। यदि शर्तलाप कश्त ममथ करिया क छोटे छोटे पद्यों और उहावतों का उपयोग किया जाय तो इनसे वातचाल में सरलता और प्रामाणिकता आ जाती है। तथापि 'अति सर वावुरी हातो है'।

यदि कोई दा-नार सज्जन इकट्टे किसी विषय पर वातचीत कर रहे हा तो अचानक उनके बीच में जाना अथवा उनकी बातें सुनना अशिष्टता है। उसे अवसर पर लोगों के पास जाकर बिना कुछ पूछे ही वातचीत करने लगना अनुचित है। कभी कभी किसी मनुष्य का चुपचाप दगकर लोग उससे कुछ कहने का आग्रह करते हैं। ऐसी अवस्था म उस मनुष्य का उचाग्र है कि यह का मनोरञ्जक वात या विषय छेड़ कर उनकी हठता-पूर्ति कर।

किसी की अस्मभय बातें सुन कर भी उसकी हा म हा मिलाना चापन्यही है और न्याय सङ्गत बातें मानकर भी उनका

कर के वगनात्मक अथवा विचारामक विषय पर सम्भाषण किया जाय। नयपुयर्का में उदान्त की चचा करना और ययो-वृद्ध कागा का श्रुद्गा रग की विनेपताये प्रताना शिष्टाचार के विरुद्ध है। सडक पर खड़े हाकर अथवा चलने हुए किसी स्त्री मे (विशेषकर दूगर घर की स्त्री मे) गत-चीत करना अशिष्ट समझा जाता है। यदि कोई मनुष्य किसी विचारामक काय में लगा हा तो उसके पास ही जोर जोर से गत न करना चाहिए। रोगी मनुष्य से अधिक समय तक वाचोत करना उसके लिए हानिकारक है, और इससे उसके रोग की भयङ्करता का उल्लेख करना रोग से भी अधिक भयानक है।

यदि अपने किसी अनुपस्थित मित्र या सम्बन्धी की निन्दा की जा रही हो तो निन्दक को उग्रता-भूवक इस काय से विरत कर देना चाहिए। और यदि इतने पर भी अपनी बात का कोई प्रभाव निन्दक पर न पडे तो किसी बहाने उसके पास मे उठ कर बले शाना उचित है। इससे उमे अपनी मूर्खता और आपकी अप्रसंगता का कुछ आभास हो जायगा। जो मनुष्य स्वयं अकारण दूसरे की निन्दा नहीं करता उमके सामने दूसरा को भी ऐसी निन्दा करने का साहस बहुधा नहीं होता।

किसी समा-समाज या जमाव मे अपने मित्र अथवा परि-चिन व्यक्ति से एसी भाषा का अथवा ऐसे शब्दों का उपयोग न करना चाहिए, जिन्हें दूसरे न समझ सकें, अथवा जो उन्हें

हिन्दी-गद्य शक्ति

मोह में पड़ कर, हिन्दी के 'ज' वाले शब्दों में 'ज' की अशुद्ध झुड़ी लगाते हैं और अज्ञानित उसे अपनी उर्दूदानी का प्रमाण समझते हैं। पर यह उनकी भूल है। क्योंकि ऐसा उच्चारण अशुद्ध होने के कारण दाना भाषा भाषियों द्वारा उपहार्यमान होता है। हमने उर्दू न जाननेवाले एक वकील महाशय को 'जायदाद', 'मजदूर', 'हज' और 'ताज' कहते सुना है। यह एक महाशय तो 'मुझे जादी घर जाना है' कह कर वकील साहब को भा भात कर देते हैं। यद्यपि हमन उपयुक्त वकील साहब को शिष्टता के अनुरोध से उस समय उनकी भूल नहीं बताइ, पर हमें उनकी यथाथ 'उर्दूदानी' का पता चल गया। यह लोग भूल से हिन्दी के फ अक्षर को 'फ' कहते हैं, जिसका उदाहरण उनके 'फल', 'फूल' और 'फन्दा' कहने में मिलता है।

शिष्ट भाषण में इन दोषों से बचने की बड़ी आवश्यकता है। बिना उर्दू पढ़े उम भाषा में ज, फ, क और ग का उच्चारण करने का हिन्दी को मानस न करना चाहिए। क्योंकि इससे शिष्ट-समाज में, विशेषकर शिक्षित मुसलमानों में, हँसी होती है। ये लोग अपने शुद्ध उच्चारण पर बड़ा गव्व करते हैं और दूसरी जातियों के अशुद्ध उच्चारण की हँसी उड़ाया करते हैं। इसके लिए सब से उत्तम उपाय तो यही है कि उनके उर्दू-शब्दों का उच्चारण हिन्दी के प्रचलित अक्षरों में किया जाय। हिन्दी लिपि

हिन्दी में विराम-चिह्नों का दुरुपयोग

अंगरेजी भाषा की शिक्षा के कारण हिन्दी में उस के विराम चिह्नों का उपयोग होने लगा है। यह सुगार हिन्दी के लिखा, और दूसरी आस भाषाओं में भी हुआ है, परन्तु उनके उल्लेख की आवश्यकता नहीं है। हम यहाँ इस विषय पर भी कुछ नहीं कहते कि इन विराम चिह्नों से हिन्दी को क्या लाभ अथवा हानि हुई है। इस लेख में हम केवल यही बताना चाहते हैं कि हिन्दी की अधिकांश पुस्तकें और सामयिक पत्रों में इन विराम चिह्नों का दुरुपयोग होता है।

विराम चिह्नों का विषय पर हिन्दी में किसी न विशेष रूप

हिन्दी गद्य वाटिका

के विभाषणी समाचार पत्रों और लेखकों के लेखों की जो प्रतिष्ठा सृष्टि की है उसमें हम ज़ागा के विषय में अद्भुत रस की उत्पत्ति हानी है—

“मण्डे पिफ्टारियल नाम का एक समाचार-पत्र विज्ञापन से निरुल्लसता है। यह साप्ताहिक है। विन्टन चर्चित साह्य न उसमें—महायुद्ध के चार अध्याय—नामक चार लेख तिम, उन के लिए उन्हें १५ हजार रुपया दक्षिणा मिली ! जिन सरत्यामों में उनके ये लेख निरले, उनमें प्रत्येक की २५ लाख कापियाँ प्रिंटी” !!! —सर० ।

यदि इस विचार का कोई विज्ञापन वाला निखना, तो सम्भव था कि यह इसमें आशय का एक भी चिह्न न लगाता। सारांश यह है कि अनेक स्थानों में आशय विट्ट के शुद्ध पर्यायी विराम (,) और पूरा विराम (।) ही है पर ज़ाग यथार्थ की अपेक्षा अद्भुत से अधिक रीझते हैं।

उलटे कामाग्रों (अन्तरंग चिन्हा) के उपयोग में भी बहुधा असाध्यानी और भ्रूण जाती रहती है। हिन्दी में इनके उपयोग की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी अँगरेजी में है, क्योंकि पिछली भाषा में परोक्ष भाषण (Indirect Speech) की अधिकता होने के कारण, प्रत्यक्ष भाषण को चिन्हों द्वारा सूचित किए बिना, उम का अर्थ समझने में कठिनाई होती है। ऐसी अवस्था में हम ज़ागा को इन चिन्हों का उपयोग एक

हैं। ऐसी अवस्था में आश्रित वाक्य का, स्पष्टता के लिए, अवतरण चिन्हों के बीच में रखना आवश्यक है। इसके पूर्व जो आश्रित वाक्य आया है वह यथा स्थान लिखा गया है; इसलिए उसे अवतरण चिन्हा में रखने की आवश्यकता नहीं हुई।

का० का० लालक अवतरण चिन्हा का काम डैश (—) से लेते हैं जिसके कारण संयोजक “कि” का तोप हा जाता है, जैसे रामजी ने हँस कर कहा—लाग कुछ दिना के लिए वृद्ध वनना छोड़ दें तो कुछ लाभ हान की सम्भावना है।
—सर०।

डैश का यह उपयोग सवाद मय लेखा (और नाटकों) में तो सप्र-सम्मत है, परन्तु वर्णन के बीच में और विशेषकर प्रस्ताविक क्रिया (कहना, पूछना आदि) के पश्चात् जो सवाद आते हैं उनमें विराम (कामा) ही उपयुक्त जान पड़ता है, जैसे, एक दिन उपमन्यु के परीक्षार्थ गुरुजी ने कहा, वत्स उपमन्यो ! आज तुम वन में जाकर हमारी गायें चरा लाओ।—विद्यार्थी।

किसी किसी पुस्तक में एक के बदले तीन तीन चिन्ह लगाए जाते हैं, जैसे, वह बच्चा एक दार्द को देते समय उसने कहा था,—“इसका पालन पोषण बहुत अच्छी तरह करना क्योंकि यह विलक्षण और अमानुषी शक्ति का आदमी होगा”।
—ना० प्र० प०।

इस उदाहरण में ‘करना’ और “क्योंकि” के बीच में तो लेखक ने अर्द्ध विराम (;) छोड़ दिया, पर जहाँ अकेले एक

(च) अप्रचलित विदर्शी शब्द म, जंस, "रेड क्रॉस", 'बौटी' । —३० ।

(छ) जिमा लिंग प्रचलित अथवा आक्षेपयोग्य शब्द या वाक्यांश म जमे, बल्लमटेर", "प्रस्ताव", "शायकाट", "नाइका रमान्त्र काष्ठ की ब्रेडियो" । —३० ।

(ग) इस शब्द के लिंग जिसका धात्वर्थ भी उताना हो; जैसे, विभक्ति को "विभक्त" रूप लिखना चाहिए, इन्द्र 'सिंहामन' पर बैठा । —३० ।

हम यहाँ यह कह देना आवश्यक समझते हैं कि ऊपर लिखे नियम सबथा पूरे और निरपवाद नहा हैं ।

ग्रन्थविराम (,) के उपयोग में गुरुता यह भूल होती है कि कई लेखक "इसलिए", "परन्तु", "और", "क्याकि" से आरम्भ होने वाले वाक्यांशों को सदा पूरे विराम के पश्चात् लिखते हैं; जैसे, "मछलियाँ पर इस परिवर्तन का और भी जल्दी और अधिक प्रभाव पड़ता है । और कीड़े मकोड़े आदि तो मृत-परिवर्तन के अनुसार और भी शीघ्र परिवर्तित हो जाते हैं" । —ना० प्र० प० ।

बङ्गाली भाषा भी इस पद पर प्रतिष्ठित हो सकती है । क्याकि फ्रांसीसी भाषा की तरह वह बड़ी मधुर है । —सर० । ३० ।

ऊपर लिखे समुच्चय-बोधक शब्दों से केवल किसी विशेष अवस्था में वाक्यांश का आरम्भ हो सकता है; सवत्र नहीं ।

पश्चात् 'पर' शब्द पढ़ कर एक बार वैयाकरण भी चक्र में आ जायगा। वह न होगा कि क्या कभी वाक्य के पश्चात् भी विभक्ति अथवा सम्बन्ध सुगम अर्थपर आता है! विस्तार-भय से हम यहाँ समानाधिकरण शब्दों और गण्यों के विषय में कुछ न लिख कर, अगले इसी वाक्य को शुद्ध करते हैं, जो इस प्रकार होना चाहिए—

'तत्र दस्तरखान (भोजन रखने के कपड़े) पर भोजन रखती'। अथवा दूसरे प्रकार से, "तत्र दस्तरखान पर (जिस कपड़े पर भोजन रखते हैं) भोजन रखती"। बिना इस प्रकार के परिवर्तन के वाक्य का अर्थ केवल अटकल ही से लगाया जायगा।

कोष्ठक के इस दुरुपयोग के अनैका उदाहरण मिलते हैं; और ऐसा जान पड़ता है कि लोग इसे कलाई-घड़ी के समान शोभा की वस्तु समझते हैं, फिर चाहे वह ठीक समय बतलावे, चाहे गलत। इस दुरुपयोग का एक और उदाहरण यह है—

"इनके लिए सन् १८८४ में एक नाइट-स्कूल (रात्रि की पाठशाला) खोला गया"।

इस उदाहरण में दोनों समानाधिकरण शब्द एक ही लिङ्ग के होना चाहिए। "पाठशाला" के बदल "विद्यालय" लिखने से भूल सुद्ध हो सकती है।

कोष्ठक के समान टैश की भी दुर्गति है। यद्यपि टैश कभी

जो तजम्मे रूप हैं—उन्हीं के आधार पर सम्पत्तिशास्त्र के सिद्धान्त निश्चिन जिन गए हैं।—न० शा० ।

प्रश्नवाचक चिह्न () सम्बन्ध में भी हिन्दी में भूलें मिलती हैं। भूलें बतधा जो स्थानों में होती है। एक भूल "बताना", "कहना", "समयाना" और "जिखना" आदि क्रियाओं के विभिन्न रूपों में होती हैं जिसे कुछ अद्भुत शिक्षित परीक्षक भूल से प्रश्नवाचक समझ लेते हैं; जैसे, 'सिखन्दर ने भारतवर्ष पर जो पडाइ की थी, उसका सक्षिप्त वर्णन लिखा?' दूसरी भूल उन प्रश्नवाचक शब्दों के कारण होती है जो अथवा केवल सम्बन्ध-वाचक हैं; जैसे, कई लोग यह नहीं जानते कि खर कैसे बनता है? ऐसे स्थानों में प्रश्नचिह्न के बदले पूर्य विराम का प्रयोग करना चाहिए। कभी कभी आश्रय गौर प्रश्न के चिन्हों की आपस में मुठभेड हो जाती है; जैसे, वह मन में चिन्ता करने लगा कि अब मैं क्या करूँ? इस वाक्य में प्रश्न के बदले आश्रय का चिह्न चाहिए।

हिन्दी में कोलन () का स्पष्ट उपयोग नहीं होता; क्योंकि इसमें विसर्ग का भ्रम हो जाने की सम्भावना* है; पर देश के

* इसी से हमने लेखक महाशय के इस लेख के कोलन देशों (—) में से कोलन निकाल दाले हैं। उनके कथन को स्पष्ट करने के लिए केवल इसमें और नीचे के पारे में दानों रहने लिये हैं। स० सं०

१६

शुक की कथा

अनुवादक—श्रीयुत गदाधर सिंह

[इनका जन्म सन् १८३६ में काशी में हुआ था वंश आप रहने वाले सच्चिदा जिला कानपुर के हैं। आप राजपूत मेना में नौकर हैं। आप चीन की लड़ाई में शामिल हुए थे। आप आर्य समाज के पुराने सभासद हैं। आपने 'चीन में १३ मास' और 'हमारी' एडवर्ड 'सिल्क यात्रा' नामक दो पुस्तकें लिखी हैं। बगला पुस्तक 'कादम्बरी' का हिन्दी में अनुवाद भी किया है।]

शुक नामक एक परम बुद्धिमान् महाप्रतापी राजा अपने बाहुबल और पराक्रम से ब्रह्मशा अशेष देश जीत कर घेन्नवती नदी के तीर पर विदिशा नामक नगरी में अकटक राज्य करता

हिन्दी-भाषा-यात्रिका

से जैसे सर-सरो उमी की आग देवने लगते हैं, उमी भाति छडी का शत्रु सुन पर सम्पूर्ण मनासदादि चाण्डाल-कन्या की ओर देउने लगे। राजान भी उमी योग गृहिपात करके देता कि एक बड़ा मनुष्य और पीछे पिनरा हाथ में लिए एक बालक जो उन दोनों के मध्य एक परम सुकुमार कन्या खड़ी है। कन्या का रूप-लावण्य ऐसा था कि किसी भाति वह चाण्डाल-कुल की नहीं जान पड़ती थी। राजा उसकी अनुपम सुन्दरता और सुकुमारता को देख नई विस्मित हुए और एक-एक देखने लगे। वे अपने मन में तर्क करने लगे कि विधाना ने यह मोक्ष कर कि ला-इम कन्या का हीन भाति जान कर न छुपौं इनको इतना रूप-लावण्य दिया है। यदि ऐसा न होना तो ऐसी कान्ति और रूप का होना भी अनहोना है। जो हो, चाण्डाल के घर में ऐसी रूपवती का सम्भव असम्भव और वह आश्चर्य का विषय है। राजा इन प्रकार कल्पना कर रहे थे कि उती समय कन्या ने आकर विनयपूर्वक प्रणाम किया। बड़ा हाथ में पिनरा लेकर सन्नुड़ खड़ा होकर विनीत वचन कहने लगा—'महाराज यह सुझा सकर शास्त्रवेद्या, रावनीतिज्ञ सद्व्या चतुर, सकल कलानिह मदा कवि और उली है। जो विद्या मनुष्यों को कठिनाता से आती है, वह इसके कठोर बतती है। इनका नाम वैशान्वायन है। मन्तार के समस्त राजाओं की अज्ञानता और दो विद्वान और

क शाप से जट हो गए हैं। यहाँ यात्रा का हाते होत मभा भङ्ग-सूचक मन्दाह काल का शाप रत्ता। जान का समय निकट जान राजा न मभागिना अण राजाया का गिनीत यघन कह कर गिना गिया। चाण्डाल रन्या का भी विश्राम करने की आज्ञा दी गई। नाम्बल वाहक से कहा कि तुम वैशम्पायन का महान्त का आना और खान-भोजन कराया।

अन्तर इसके आप भी सिंहासन में उठ कर राजभरण में बैठें और म्नात पूजा आदि करने शयनागार में शय्या पर पौढे और प्रतिहारी को वैशम्पायन के लाने की आज्ञा दी। प्रतिहारी वैशम्पायन को शयनागार में ले आया। राजा ने पूछा—हे वैशम्पायन, तुम्हारा जन्म किस प्रकार से और कौन से देश में हुआ? तुम कौन सिद्ध हो या काय महापुरुष हो? तपस्व से कनेपर बदले देश देश में भ्रमण करते हो या किसी देवता की आराधना कर तुम ने पर पाया है? पहले तुम कहाँ रहते थे? किस भाँति चाण्डाल के हाथ पड कर पित्र में उन्ट हुए? हम को इन सब बातों सुनने की बड़ी इच्छा है। सा तुम अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त कह कर हमारे चित्त को उद्देग-रहित करा।

वैशम्पायन ने राजा की यह बात सुन कर कहा कि यदि आपका सुनने की बड़ी अभिलाषा है, तो सुनिए। भरतखण्ड का मध्य विन्ध्याचल के निकट विन्ध्य नामक एक जङ्गल है।

पक्षी मग्न अपने खेतों में सोते और प्रातः काल आहार की स्वाद में गात्र बांध कर आकाश मार्ग में उड़ जाते। उस समय पत्नी शोभा जान पड़ती थी जैसे कोई हरी दूध सम्पन्न गंत उड़ा चला जाता है। वे सब विभिन्नान्तरों में जाकर आहार पकत्र कर आप भी खाते और अपने पत्नी के लिए मुँह भर भर कर ले आते थे।

उस प्राचीन वृक्ष के खोखल में मर माता पिता भी रहते थे। दैव संयोग से मरी माता गभवती हुई और मर जन्म के उपरान्त प्रसव की पीडा में मर गई। मर पिता बड़े बूढ़े थे और स्त्री के मरने से यद्यपि गटे व्याकुल और शोकचित्त हुए, परन्तु प्रीति-वश शोक त्याग कर मरे लालन पालन में दिन व्यतीत करन लगे। उनकी चलने फिरने की कुछ शक्ति न थी, तब भी धीरे धीरे उस वृक्ष के नीचे उतर कर जो कुछ आहार-द्रव्य पृथ्वी पर गिरा हुआ मिलता, उसे ला कर मुझे खिलाते और पचा खुचा आप खाते थे। एक समय प्रातः काल जब चन्द्रमा अस्त हो गया था, पक्षी मग्न चहचहा रहे थे, सूर्य के उदय से गगन मण्डल रक्त-युक्त हो रहा था, आकाश स्थित अन्धकार रूपी धूल सूर्य की किरण रूपी झाड़ू में परिष्कृत हो गयी थी और सप्त ऋषि लोग म्नानादि के निमित्त मानसराज के तट पर उतरे थे, उसी समय उस वृक्ष के रहने वाले सब पक्षी भी अपनी अपनी इच्छा के अनुसार देशदेशान्तर को चले। उन के

की उन्मत्तता से शोना नय रत्न-वर्ण हो रहे थे, समस्त शरीर में रुधिर लगा हुआ था और सग में गहृत न बड़े बड़ कुत्ते थे। उन्हें देखने से यह जान पड़ता था, माना कोई भयङ्कर असुर जङ्गल के पशुओं का पकड़ पकड़ कर खाता चला आता है। व्याधों का देख कर मेरा मन में विचार किया कि ये कैसे दुष्कर्मा और दुराचारी हैं। जङ्गल इनका घर है, धनुष धन, कुत्त मित्र और राघ सिंह आदि हिंस्र जन्तुओं के साथ यास और पशुओं की प्राण हत्या इनकी जायिका है। इन के हृदय में दया का नाम भी नहीं है और ऽ अधर्म का कुछ भय है। सत्कर्म तो ये जानत ही नहीं कि किसे कहते हैं। ये लोग सदा धर्म-पथ को छोड़ निन्दित और घृणित बने रहते हैं। मैं इस प्रकार तकना कर रहा था कि वे मृगया की थकावट को दूर करने की इच्छा से उसी वृक्ष के नीचे आ बैठे जिस में मैं रहता था, और एक निकटवर्ती सराय से जल और मृणाल ला कर उन लोगों ने जलपान किया और फिर चल गये।

उस मेना में से एक वृक्ष को उस दिन कुछ आंग्रेट नहीं मिला था। वह उनका सग छोड़ उसी वृक्ष के नीचे खड़ा रहा। जब वे सग चले गये तो उसने अपनी लाल लाल आँखों से एक बर वृक्ष का नाचे से ऊपर तक देखा। उस क देखने ही से उस में के रूचों के प्राण उड़ गये। हाय ! दुष्टों को कोई कर्म असाध्य नहीं है। जैसे नितेनी द्वारा अटारी पर चढ़ने

अपने उम्पित चरण और छोट उठे पत्रा की सहायता से गिरता पडता चला जाता था और मन में यह सोचता जाता था कि अब तो कालग्रास न बचा, और जा कर एक निकटवर्ती तमाल वृक्ष का जड़ में छिपा। इतन में वह व्याध वृक्ष से उतर कर मर हुए परिक्षिप्तकों को एक तला से राध जिगर वह मेना गड गी, उसी ओर चला गया।

ऊँचे से गिरन और भय के कारण मरा शरीर थर थर कापता था और पिपामा ने उठठ मखा जाता था। यह सोच कर कि अब वह व्याध दूर चला गया हागा, मैंने सिर निकाल कर चारा ओर देखा और डरत डरत धीरे धीरे चलने का उद्योग करने लगा। गिरते पडते चलते चलते शरीर मृत्तिका से लिप्त हो गया और सांस फूलन लगा। उन्म समय, मैंने मन में सोचा कि चाहे किसी का किनना ही क्लेश क्या न हो पर वह जीव-आशा नहीं छोडता। मैंने यपन नत्रा से देखा कि पिता स्वयं लोभ को सिधारे, और मैं मृत इतने ऊँचे से प्रियनेन्द्रिय हो कर गिरा, पर अभी तक जीने की आशा कौसी मन में बनी है। हाय ! हमारा सा निदय और कौन है ? माता जन्मते ही मर गई, पिता पत्नी विरह परित्याग कर मरे लालन पालन में नियुक्त थे और बुढापे में भी मर लिए इतना क्लेश सहते थे। परन्तु मैं सब भूल गया। मुझ मरीखा कृतघ्न और दूनरा नहीं है और अपना सा निर्दयी और दुराचारी भी मैं किसी को नहीं

पडा है। ऐसा जान पड़ता है कि किसी शाकमली के वृक्ष पर से गिरा है। इस का रोग घूँस रहा है और नेत्र अन्ध हो रहे हैं। जान पड़ता है कि उड़ा प्यासा है। यदि थोड़ी देर जल न मिलेगा तो अग्रथ्य मर जायगा। चला हम इसे सरोवर पर ले चल कर जन शिवाय। सम्भव है कि उच जाय। यह कह कर उन्होंने सूर्य का माग म से उठा लिया। उनके स्पर्श मात्र से मरा शरीर शीतल हो गया। अनन्तर इसका मुझे मानस-तीर ले जा कर मरा मुँह गोल अपनी उठ्ठली में जल पिलाया। जल पीने से पिपासाभि शांत हुई। फिर मुझे खान कराके नलिनी पत्र की शीतल छाया में बैठा दिया। आप भी खान कर सूर्य्य को अर्घ्य दान दे, गीला रख उनाए, पुनीत नवीन वस्त्र धारण कर, मुझको ले तपोवन की ओर धीरे धीरे चले।

तपोवन के निकट पहुँच कर मैंने देखा कि यहाँ के वृक्ष सब कुसुमित और पल्लवित हो रहे थे और फल भार से भूमि स्पर्श करने थे। इलायची और लवंग की सुगन्ध चारों ओर छा रही थी और मधुप झंकार करते हुए एक एक पुष्प से दूसरे पुष्प पर भ्रमण कर रहे थे। अशोक, चम्पक, किशुक, मल्लिका और मालती आदि नाना प्रकार के वृक्षों और लताओं के एकत्र होने और उनकी डालियों के मिल जाने से स्थान स्थान पर सुन्दर रमणीय गृह बन गये थे, जिनमें सूर्य्य की विरण प्रवेश नहीं कर सकती थी। बड़े बड़े ऋषि लोग मन्त्र पढ़ पढ़ कर हाम कर रहे थे

भी कुसुमित हो रह है। मानो मृत्युयुग कृतियुग के भय से भाग कर इसी तपोवन में आ छिपा है। वृक्षों की शाखा में मुनियों की छाला, कमण्डलु और माता लटक रही थी और नीचे बैठने के लिए बड़ी घनी थी। मानो सब वृक्ष भी तपस्वी का वेप धारण करके तपस्या करते थे।

ऋषिकुमार मुझको उसी रक्ताशोक के नीचे रख, अपने पिता के चरण कमल की वन्दना कर, स्वतन्त्र हाथ यासन पर बैठे। सब ऋषिकुमारों ने मुझको देख कर बड़ा आश्चर्य माना और हारीत से पूछा कि हे सखा ! इस शुरु के उच्छे को तुमने कहाँ पाया ? उन्होंने कहा कि जंगल में स्नान करने को जाता था, तब इसका टरग कि अपने खोते से गिर कर पृथ्वी पर लेट रहा था। इसकी यह दशा देख कर मुझ दया आई। परन्तु जिन वृक्ष पर से यह गिरा था, उस पर का चढना कठिन समझ में इसे अपने सग लेता आया। अब चाहिए कि हम सब यत्नपूर्वक इसकी रक्षा करें।

हारीत की यह बात सुनकर जात्रालि ऋषि ने मरी शोर दखा। उनकी दृष्टि पडते ही मैंने अपने को कृतार्थ जाना। उन्होंने परिचित गी भाति वारम्बार मरी शोर दख कर कहा कि यह अपने किये का फल भोग रहा है। महर्षि त्रिशूलदर्शी थे। तपस्या के बल से उनको भूत, भविष्य और वर्तमान समान जान पड़ता था और ज्ञानदृष्टि द्वारा सम्पूर्ण ससार उनको

उत्तर दिया। मुनि सत्र व्यानरिखत होकर और हाथ बांध कर सन्ध्या-चन्दन कर लगे। कामधनु के दुहे जाने का शब्द चारों ओर सुना देने लगा। श्री तुशा अग्निदोश की वेदी पर विछाई गई। तिमिर नाशक के भय से छिपा हुआ तिमिर प्रकट हुआ। सन्ध्या के भय हाने के शोक में दु गिन रात्रि अन्धकार रूपी कृति प्रथम प्रारण करके दृष्टिगोचर हुई। ग्रह रूपी चोर भी, जो सृष्य के प्रताप से छिपे थे, बाहर निकले। पूर्व दिशा में चन्द्रमा का थोड़ा थोड़ा प्रकाश होने लगा। इस से उसकी शोभा ऐसी जान पड़ती थी, मानो वह मुसविरा रही हो। सुधाधर का पहले कला मात्र, फिर आधा और फिर ब्रमश समस्त मण्डल प्रकाशित हुआ और अन्धकार का नाश हुआ। कोई धूली और मन्द मन्द समीर के बहने से मृग आद्यादित हुए। जीव-जन्तु आनन्द मय, कुमुद गन्धमय और तपोवन प्रकाशमय हुआ।

द्वारित भोजन आदि समाप्त करके मुझे ली ऋषिकुमारों के साथ पिता के समीप जा पहुँचे और देखा कि वे एक श्वेत के आसन पर बैठे हैं और जलपाद नामक शिष्य पखा झल रहा है। ये पिता के सम्मुख हाथ जाड़ कर खड़े हुए और बोले कि हे पिता, हम लोगों को इस सुण के बच्चे का वृत्तान्त सुनने की बड़ी इच्छा है। यदि आप कृपा कर बखन करें तो हम सब बड़े कृतार्थ हों।

महर्षि ने ऋषिकुमारा भी वह दशा देख कर कथा आरम्भ की जिसे सुन कर ऋषि कुमारों को बड़ा आश्चर्य हुआ।

या कहन का तां चाहे हिन्दी में नयाज कृत 'शकुन्तला' नाटक, हृदयराम कृत 'अनुमान' नाटक, या ब्रजरासी दास कृत 'प्रबोध चन्द्राक्षय' आदि का सौ वर्ष पहले के बने हुए यह नाटक उतमान है। पर वास्तव में नाट्यकला की दृष्टि से वे नाटक गण्य नहीं जा सकते, क्योंकि उन रचनाओं में नाटक के नियम का पालन नहीं किया गया और वे काव्य ही काव्य हैं। हाँ, 'प्रभासती' और 'मानन्द गुणानन्द' आदि कुछ नाटक अवश्य ऐसे हैं जो किसी प्रकार नाटक की सीमा में आ सकते हैं। कहते हैं कि हिन्दी का पहला नाटक रामू हरिश्चन्द्र के पिता श्रीयुक्त रामू गणपालचन्द्र उपनाम गिरधर दास कृत 'नटुप' नाटक माना जाना चाहिए। पर वह भी साधारण गीत घात की हिन्दी में नहीं, बल्कि ब्रज भाषा में है। इसके उपरान्त लक्ष्मण सिंह ने शकुन्तला नाटक का अनुवाद किया था। यद्यपि यह नाटक भाषा आदि के विचार से बहुत अच्छा है, किन्तु मौलिक नाटक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह कालिदास कृत शकुन्तला नाटक का अनुवाद है। भारतेन्दु रामू हरिश्चन्द्र ने तो मानो नाटक रचना से ही आधुनिक हिन्दी को जन्म दिया था। उन्होंने लगभग तीस नाटक लिखे थे, जिन में से अधिकांश अनुवाद नहीं तो छायानुवाद अवश्य थे, तो भी उनके कई नाटक बहुत अच्छे हैं और अब भी अनेक स्थानों पर खेले जाते हैं। लाला श्रीनिवास दास कृत रणधीर

निकले। इधर कुछ दिना स इन अनुवादों की मग्या और भी बढ गइ है जिन म मे शिष्य उल्लेख याम्य रगला के सुप्रसिद्ध नाटककार आयुक्त द्विवेदी बाल राय तथा गिरीश घोष के नाटकों के अनुवाद हैं। राय महाशय के प्राय सभी नाटकों के सुन्दर अनुवाद उम्बड के हिन्दी ग्रन्थ रखाकर मयालय से प्रकाशित हुए हैं। पर इधर दस-बीस वर्षों के अन्दर हिन्दी में न केवल नाटक प्राय बने ही नहों। इधर कुछ दिनों से काशी के श्रीयुक्त राव जयशङ्कर 'प्रसाद' ने साहित्य के इस अङ्ग की पूर्ति की ओर ध्यान दिया है और उनकी मौलिक नाटक लिखने में अच्छी सफलता भी हुई है। उनके लिखे हुए नाटकों में से यजात शत्रु, जनमजय का नागयन और विशाख आदि नाटक उहुत अच्छे हैं। यात्रा रुल कुछ धनवानों की कृपा से हिन्दी के लेखकों को अनेक प्रकार के पुरस्कार आदि मिलने लगे हैं। इस से आशा होती है कि शीघ्र ही हिन्दी में मौलिक रचना का आरम्भ हो जायगा और साहित्य के अन्यान्य अङ्गों के साथ ही साथ इस अङ्ग की भी शीघ्र ही और अच्छी पूर्ति होगी।

जहाँ नाटकों का ही अभाव हो, वहाँ नाटक मण्डलियों और रङ्गशालाओं के अभाव का क्या पूछना है। बंगला, मराठी और गुजराती भाषा भाषियों ने उहुत दिनों से अपनी अपनी भाषा में अच्छे अच्छे मौलिक नाटकों की रचना आरम्भ कर रखी है

कानपुर के लोग ने भी अपने अपने यहाँ “रघुधीर प्रेम मोहिनी” और “भक्त्य हरिश्चन्द्र” का अभिनय किया था। इसके उपरान्त हिन्दी में अच्छे गद्य साहित्य ने न करने के कारण रगशालाओं में हिन्दी का प्रवेश न हो सका और हिन्दी भाषा भाषी प्रायः पारसी थियेटर्स के उर्दू नाटकों देख कर ही सन्तुष्ट रहने लगे। अतः कल्पित यद्यपि यह बतलाने की आवश्यकता न होगी कि रगशाला मराठी या गुजराती आदि के नाटकों को देखते हुए पारसी थियेटर्स ने उर्दू नाटक वितने अधिक रुचि पूर्ण और निकृष्ट होते हैं। पर फिर भी हिन्दी भाषा भाषी उन्हीं नाटकों के अभिनय देखकर अपने आप को धन्य माना करते थे। इधर पाँच सात वर्षों से पारसी कम्पनियों के थियेटर्स में भी हिन्दी का प्रवेश हो चला है और दिन पर दिन उनमें खेले जाने वाले हिन्दी नाटकों की संख्या बढ़ती जाती है। अब तो कुछ ऐसी व्यवसायी मण्डलियाँ भी तैयार हो गई हैं जो बहुधा केवल हिन्दी के ही नाटक खेला करती हैं। पारसी कम्पनियों में तो अब कदाचित् ही कोई ऐसी हो जो दो चार हिन्दी नाटकों का अभिनय न करती हो। इस सम्बन्ध में दिल्ली के पण्डित नारायण प्रसाद चैतान का उद्योग परम प्रशंसनीय है, जिन्होंने पहले पहल ‘महाभारत’ नाटक की रचना करके और एक पारसी कम्पनी की रगशाला में उसका अभिनय कराके लोगों का ध्यान कुरुचिपूर्ण नाटकों की ओर से हटाया और

सभ्यता का विकास

ईश्वर की सृष्टि विचित्रताओं से भरी हुई है। जितना ही इसे देखते जाइए, इसका अन्वेषण करते जाइए, इसकी छानबीन करते जाइए, उतनी ही नई नई अद्भुतताएँ विचित्रता की मिलती जायँगी। कहा एक छोटा सा बीज और कहा उससे उत्पन्न एक विंगाल वृक्ष; कहा एक बिन्दुमात्र पदार्थ और कहा उस से उत्पन्न मनुष्य। दोनों में कितना अन्तर और फिर दोनों में कितना घनिष्ठ सम्बन्ध। जरा सोचिए तो सही, एक छोटे से बीज के गम में क्या क्या भरा हुआ है। उस नाम मात्र के पदार्थ में एक रूढ़े से रूढ़े वृक्ष को उत्पन्न करने की शक्ति है जो

हैं। इन्हीं सत्र रातों की जांच रिफासवाद का विषय है। यह शास्त्र हमसे इस रात की छान बीन में प्रवृत्त करता है और बनलाना है कि कैसे ससार की सत्र रातों की सूक्ष्माति-सूक्ष्म-रूप में अभिव्यक्ति हुई, जैसे क्रम क्रम में उन की उन्नति हुई और किस प्रकार उनकी सकुलता बढ़ती गई। जैसे ससार की अतात्विक अथवा जीवात्मक उत्पत्ति के सम्बन्ध में निराम-वाद के निश्चित नियम पूर्ण रूप से घटते हैं वैसे ही वे मनुष्य के सामाजिक जीवन के उन्नति क्रम आदि को भी अपने अधीन रखते हैं। यदि हम सामाजिक जीवन के इतिहास पर ध्यान देते हैं तो हमें विदित होता है कि पहले मनुष्य असम्य या जगली अवस्था में थे। वे झुण्डों में घूमा करते थे और उनके जीवन का एक मात्र उद्देश उदर की पूर्ति था, जिसका साधन वे जानवरों के शिकार से करते थे। क्रमशः शिकार में पकड़े हुए जानवरों की सरलता आवश्यकता से अधिक होने के कारण उनको बाध रखना पड़ा। इस का लाभ उन्हें भूख लगने पर स्पष्ट विदित हो गया और यहीं से मानों उनके पशु पालन-विधान का बीजारोपण हुआ। धीरे धीरे वे पशु-पालन के लाभों को समझने लगे और उनके चारे आदि के आयोजन में प्रवृत्त हुए। साथ ही पशुओं को साथ लिये लिये घूमने में उन्हें षट दिखलाई पड़ने लगे और वे एक नियत स्थान

हाता गया। जहां पहल अगम्यता या जगलीपन ही में मनुष्य सन्तुष्ट रहते थे तब उन्हीं सभ्यतापूर्ण रहना पसन्द आने लगा। सभ्यता अगम्यता सामाजिक जीवन में उस स्थिति का नाम है जब मनुष्य का अपने सुख और चैन के साथ साथ दूसरे के स्वयं की अप्रियारों का भी ज्ञान हो जाता है। आदर्श सभ्यता वह है जिसमें मनुष्य का यह स्थिर सिद्धान्त हो जाय कि 'जितना किसी काम में करने का अधिकार मुझे है उतना ही दूसरे का भी है' और उसे इस सिद्धान्त पर दृढ़ रखने के लिए किसी बाहरी अट्टाला की आवश्यकता न रह जाय। यह भाव जिस जाति में जितना ही अधिक पाया जाता है उतनी ही अधिक वह जाति सभ्य समझी जाता है। इस अवस्था की प्राप्ति बिना मन्त्रिक के विकास के नहीं हो सकती अथवा यह कहना चाहिए कि सभ्यता की उन्नति और मन्त्रिक की उन्नति साथ ही साथ होती है। एक दूसरे का अन्यान्याश्रय-सम्बन्ध है। एक का दूसरे का पना आगे बढ़ जाना या पीछे पड़ जाना असम्भव है। दोनों साथ साथ चलते हैं। मन्त्रिक के विकास में साहित्य का स्थान बड़े महत्त्व का है।



हिन्दी गद्य साहित्य

प्राजापति ने कहा कि 'आराज गारवार आन लगी। परन्तु प्राजापति ने उसे कुछ शिवलाइ नहीं देता था। सब के सब जिन्स गारही थी उपर ही दौड़। इनमें म पक जिन्स। 'उप ही थी पहल पटुँच गया। उसका द न स र्जन, मरा प्यारा लाडला बह म डर रहा है और मुझ य त ग नटो म कूदन नहीं दते, 'जुड़ा प्रा और जान दा।' 'जान है म ड, यह तो नदी क प्दाय मी प्दर चट्टानों से टकरा खा कर म्क्षण म रसातल की चला जायगी, जान है म ड?' यह शक्य उनमें से एक आदमी क थ जो उसका पफ्टे हुए थ।

१८ वर्ष के जवान न तुरन्त अपना काट उतार दिया और किनार की तरफ जाकर एक शिष्टि चट्टाना और पानी के भँवरों पर डाली। फिर डूबते हुए शक के परआ को देख कर वह उसकी तरफ कूदा।

"हे भगवान्, यह मर सके जो अश्य पचाण्गा। हा! यह देखा मरा प्यारा बस अब डूबा। यह डूबा, टूटा, हा!" मय लाग नदी क किनार की चट्टान पर आकर दखन लगे। अब तक तो लोगों को सके की चिन्ता थी, अब उम नीजवान की भी चिन्ता पडी। कभी तो मालूम होता कि यह भँवर म पड गया, कभी चट्टानों क पास म पसा निकल जाता माना भगवान् ही उसकी

पहली कृपा पाश्चात्य दग के एक महानुभाव के बाल्या
 बरथा की है, दूसरा पृथिव देश के। पाश्चात्य देशों में बल,
 पराक्रम, आत्मविश्वासादि गुणों का प्रादुर्भाव अधिक होता है।
 इन देशों में आत्म त्याग, परोपकार और सेवाभाव अधिक
 होता है। महापुरुषों की जीवनी उनके देश के गुणों का दर्पण है।

बड़ आदमियों के जीवन में लोग बहुधा यही देखा करते
 हैं कि उन्होंने किन समस्याओं का स्थापित किया, किस प्रकार
 से व्याख्यान दिए अथवा ग्रन्थ लिखे, कौन कौन से बड़े काम
 किए। परन्तु उनके जीवन में केवल ये ही कार्य उतने शिक्षाप्रद
 नहीं होते जो वे प्रकट रूप में सत्कार के समुख करते हैं जितने
 वे काय जो वे घर के अन्दर अपने नित्यप्रति के व्यवहार में
 करते हैं अथवा जो वे बाल्यावस्था में अनायास कर बैठते हैं।
 वाशिङ्गटन और रानडे की जो कथाएँ ऊपर दी गई हैं उन से
 हमें उनके अन्य देशोपकारी कार्यों की अपेक्षा अधिक शिक्षा
 मिलती है। अमरिका की फाइरेस का वाशिङ्गटन की नाई
 प्रत्येक मनुष्य सम्भाषति नहीं हा सकता, न रानडे की नाई
 हाइकोर्ट का जज अथवा अनेक समस्याओं का प्रवर्तक हो
 सकता है। परन्तु यह प्रत्येक साहसी आदमी के लिये सम्भव
 है कि वह करते हुये को बचा ले। इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य
 सत्कार के पदार्थों में से, जो ईश्वर ने उसको प्रदान किये हैं, अपने
 हिस्से में से भी दूसरों को दे सकता है, जैसा कि रानडे ने

२०

नेता के कुछ गुण

लसक— श्रीयुत माधव राव सप्रे, वी० ए०

[श्रीयुत माधवराव जी महागण्टूमज्जन थे पर आपने राष्ट्र भाषा हिन्दी को अपनाया था। आपका नाम १९ जून मन् १९४१ को हुआ था। आपने नागपुर से निकलने वाले मासाहिक पत्र 'हिन्दी केसरी', का संपादन किया और लेकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक के मराठी ग्रन्थ, 'गीतारहस्य,' का हिन्दी में अनुवाद किया। आप पन्द्रहवें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति भी हुये थे। इन के कुछ प्रयोगों के नाम थे ई—आरमधिद्या दासधोध भारतीय युद्ध जधिन सग्राम में विजय प्राप्ति के उपाय, महाभारत भीमामा। इनकी मृत्यु ०३ अप्रिल १९२६ ई० का हुइ।]

पर भी, दश का पात कभी न करनवाना कौन है, इत्यादि। इन बातों का पता लगाकर फिर उस ग्राम में प्रवेश करना चाहिए। तागा व गसगा हाट का जान तेम पर भी, यह भेद किसी का न बनना पर, मरफा सम्मान करना चाहिए और अग्रमर गसगा गसट बुद्धिमान तागा का सज्जनता व द्वारा वश कर नमाग म जान का प्रयत्न करना चाहिए। दुजन को तुजन करने में कोई लाभ नहीं—उसे वरल पहिचान रखना चाहिए, और उस पर कपट भाव न रखकर उसका उपकार तथा सुधार करने में कभी न चूटना चाहिए।

प्रयत्न गद और परिश्रम शीलता की आवश्यकता तो समार में सब क लिए है, परन्तु नेताओं के लिए अत्यन्त अधिक है। नेता व, यथात् बड़ी बड़ी जिम्मेदारी के कामों के सूत्रधार व, थोड़े से आचार्य में हजारों लाख मनुष्यों की अपार हानि हो सकती है। श्रीममथ ने यतलाया है कि देव का भराभा करते हुए और उग्रम का त्याग कर हाथ पर हाथ बरे कभी न बैठ रहना चाहिए। उनका मत है कि राजा अथवा रडू होना, उत्तम अथवा अग्रम होना और सुखी अथवा दुखी हाना प्रारण्य का परिणाम नहीं, किन्तु अपने गुणों और कार्यों का परिणाम है। उन्होंने गपट शब्दा में कहा है कि प्रयत्न और परिश्रम किये बिना तथा कष्ट सहें बिना कोई फल नहीं मिलता, कष्ट के बिना राव्य नहीं हो सकता। उनका

शब्द पर सहस्रा रूपये खरसने लगते हैं, क्योंकि दरिद्र से दरिद्र लोगों का भी मालूम रहना है कि ऐसे सज्जन स्वयं अपने लिये कुछ नहीं करते — स्वयं का उपकार ही करते हैं। ध्यान रहे कि जो मनुष्य निरपृथ्व नहीं होगा उसे दूसरा के दुःख में दुःख और तब । कुछ नहीं होगा।

परफारक लिये सदैव तत्पर रहना सात्त्विकता का सूचक है। यही नेता का सर्वप्रधान गुण है। इस विषय का भेदभाव रखना अनुचित है कि अमुक का उपकार और अमुक का काम करना चाहिए। दूसरों का और पिशेपत दुर्जनों को भी आत्मवत् मानने पर, और अगमर पडने पर उनका उपकार करने से, आत्मिक शक्तिया का पूर्ण प्रकाश होता है। दूसरे की विपत्ति के समय किसी भय अथवा असाध्यानी से मुँह छिपाना नेताओं का काम नहीं है। यदि नेता किसी की विपत्ति में सहायता करने दौड़ेगा, तो पचासा आदमी भी उसकी सहायता करने के लिये दौड़ जावेंगे और उस आपत्ति ग्रस्त मनुष्य का दुःख भार हल्का हो जावेगा। इस तरह के कृत्या से जन-समुदाय के सामने मनुष्यता का उज्ज्वल उदाहरण उपस्थित होगा और भावभाव का यथेष्ट प्रसार होगा।

स्वामी रामदास ने नेताओं में उत्कटता का होना परम आवश्यक बतलाया है। उत्कटता किसी काय में पूर्ण प्रवीण होने

हिन्दी-गद्य-शास्त्रिका

स्वधर्म, स्वदेश और स्वराज्य का हित के लिये प्रयत्न करने वाले हमारे प्राचीन नेता का यही स्वरूप था।

स्मरण रहे कि नेता के उक्त सब आवश्यक गुणों में आध्यात्मिकता का प्रधान सूत्र है। ये गुण जैसे सामाजिक मार्ग में, जैसे ही पारमार्थिक कामों में भी उपयोगी हैं। नेता चाहे समाज का हो, धर्म का हो, राजनीति का हो या व्यापार-व्यवसाय का हो, परन्तु जब तक उसमें आध्यात्मिकता के आधार पर—ईश्वर के अधिष्ठान पर—उक्त गुण का विकास न होगा, तबतक उसका आन्दोलन सफल न होगा। माना कि आन्दोलन में शक्ति है, रामदास स्वामी भी इस तत्व का समर्थन करते हैं, परन्तु उनका कथन स्पष्ट है —

“जो का आन्दोलन करेगा उसमें शक्ति है, परन्तु उसमें ईश्वर का अधिष्ठान होना चाहिए”।

तात्पर्य यह है कि हमारे नेता अपने प्रत्येक कार्य और आन्दोलन में “ईश्वर के अधिष्ठान” का अनुभव करें। यही आध्यात्मिकता नेता का प्रधान और सर्वश्रेष्ठ गुण है।



करवीर तक का सागर प्रान्त और काकण का कुछ भाग जीत लिया था। यद्यपि इस प्रकार व राज्य सम्पादन के कार्य में लगे थे, ता भी सना समागम का उन्हें विशेष रुचि थी। गल्पन से ही साधु और सन्नजनों के विषय में पूज्यभाव होने के कारण - साधु समागम के लिए सदा उत्कण्ठित रहते थे। व अपना राज राज करत हुए भी चिन्तन दृष्टि, आलेन्दी आदि प्रसिद्ध स्थानों में साधु जनों के दर्शन को बार बार जाया करते थे और उन का उपदेश आद्यायुक्त अन्त करण में सुनते थे। जहाँ जहाँ हरि भजन या कीर्तन हाता या वहाँ वहाँ वे अग्रश्य जाते थे। उनका माता जी साधुओं से उन्हें प्रचपन से ही अपने सनातन धर्म के शास्त्र, वेद, पुराण और वेदान्त आदि के गम्भीर तत्त्व और सिद्धान्त तथा शिक्षादायक कथाओं की शिक्षा दिलाई थी। इस लिए अपनी माता की शिक्षा और साधु-समागम के कारण उनके मन में अपने जीवन की सार्थकता के विषय में अनेक उच्च विचार भर गए थे। वे सदा इस बात का चिन्तन करते रहते थे कि जीवन की सार्थकता उत्तम रीति से कैसे की जाय। उन्होंने एक बार सुप्रसिद्ध साधु तुशाराम बाबा से मन्त्रापदेश की प्रार्थना की थी, पर उन्होंने शिवाजी को श्रीरामदास स्वामी की शरण में जाने की आज्ञा दी। इस प्रकार मन की मुमुक्षु अवस्था में जब शिवाजी ने श्रीममर्थ की साधु कीर्ति सुनी, तब उन्हें उनके दर्शन की बहुत अभिन्नापा हुई।

हमारे प्रतलाप हुए माग को रबीकार करो। श्रीरामचन्द्र जी कृपा करेंगे, तुम्हारा शाय निद्र होगा, तुम्हारे सार मनोरथ पूरा होंगे। इन विषय में सन्देह मिलकुल मत करना।

समर्थ का पत्र पढ़ कर शिवाजी के प्रामिक और निष्ठापुक्त अन्तर्दृष्टि में श्री रामदास स्वामी के दर्शन की उत्कण्ठा और भावना ही गयी। तब वह अपने सग कुठ आठमी लेकर समर्थ के दर्शन का चाफल गया। परन्तु समर्थ का दर्शन न हुआ क्योंकि वे एक स्थान में न रह कर चाफल के आस पास कृष्णा नदी के किनारे उड़ते दूरी और गवारिया में विचरने रहते थे। महीपति ने अपने "मन्त्र विजय" में लिखा है कि इस प्रकार शिवाजी महाराज को रुड़ गार निराश होना पडा, तो भी उन्होंने यत्न करना न छोडा। अन्त में एक दिन वह निश्चय कर के घर से निकले कि जब तक समर्थ का दर्शन न होगा और उनका प्रसाद न मिलेगा, तब तक भोजन न करूँगा। इस तरह दृढ़ निश्चय कर के समर्थ का पता लगाते हुए चाफल के जंगल में भटकते भटकते जब शिवाजी बहुत थक और आत हो गये, तब समर्थ के शिष्य द्वारा उन्हें पता लगा कि समर्थ गडो के राग में है। शिवाजी न वहाँ जाकर दर्शन किया। जाना की प्रेम पूरक याता हुई। शकाब्द १५७१ वैशाख शुक्र गुप्तार के दिन समर्थ ने शिवाजी को मन्त्रोपदेश दिया और

जीवा का पालन और कौन कर सकता है ? शिवाजी महाराज अपने मन में समझ गए, और बोले—मुझ पामर ने कुछ नही हो सकता । इस बात का क्षमा कीजिए ! समर्थ ने कहा— मैं क्षमा करने के लिए ही इस समय आया हूँ । परन्तु इतना बता दना आवश्यक है कि भैया, तुम उस सरकार (श्रीराम) के बड़े नाज़र हों । तुम्हारे हाथ से वह झोला को देना है, इनकी बात से तुम्हें इस प्रकार का अभिमान कभी न करना चाहिए । यह सुन कर शिवाजी महाराज का बड़ा पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने समर्थ के चरणों पर गिर कर कर क्षमा मांगी ।

एक दिन सज्जनगढ़ में भोजन के बाद समर्थ शिष्य-मण्डली के प्रश्नों का उत्तर देते हुए आसन पर बैठे थे । इनमें से सहज ही उन्हें अपने शरीर पर एक चट्टा उठा हुआ देख पड़ा । उसे देख कर समर्थ को स्मरण हुआ कि हमारी माता ने हमारे लिए देवी जी को सान के पुष्प अर्पण करने का संकल्प किया था, वह संकल्प पूरा नहीं हुआ । अतएव प्रतापगढ़ को, जहाँ शिवाजी ने देवी की स्थापना की थी, समर्थ स्वयं पुष्प अर्पण करने को गए । वहाँ समर्थ ने देवी जी की जो स्तुति की उस में उनके आत्म-चरित्र का भी कुछ उल्लेख है । अन्तिम चार पत्रों में शिवाजी के सम्बन्ध में जो प्रार्थना की है, वह ध्यान में रखने योग्य है । उसका भाग्य यह है—हे माता, मेरी सिर्फ एक प्रार्थना है । यदि चरणों देना है, तो यही

विलायती समाचार-पत्रों का इतिहास

लेखक—श्रीयुत प्यारेलाल मिश्र, वारिस्टर एट ला

[आप छिन्वादा में बैरिस्टरी करते थे। कुछ वर्ष हुए आपकी देहान्त हो गया। आपकी शैली बड़ी ही सरल और स्वाभाविक है। आप छोटे छोटे वाक्य लिखते हैं। श्री० महावीर प्रसाद द्विवेदी आपकी लेखन शैली की बहुत प्रशंसा किया करते हैं।]

टाइम्स के बाद दूसरा इज्जनदार दैनिक “डेली टेलीग्राफ” समझा जाता है। इसका डीज डीज टाइम्स से कुछ बड़ा है। इसमें सदैव २० पृष्ठ रहते हैं। इसका कागज टाइम्स से कुछ हलका पर मोटा रहता है। छपाई अच्छी रहती है। ग्राहक सग्या में यह टाइम्स से बड़ कर है। इसकी दैनिक विक्री अनुमान तीन लाख है। इसके लेख किसी किसी के विचार में टाइम्स से

मे० सर चचाहिल इत्यादि । वि० सर चचाहिल दक्षिण अफ्रीका
 के युद्ध में टेलीग्राफ के मंत्रिमन्त्रि सहायक जाता था । इनके न्यायी
 सैनिक सम्पादक मिस्टर राजे बर्ल है । इन्होंने अनेक रणक्षेत्र
 देखे हैं । आप स्वाइलड वि० राजे एक प्रहरी के पुत्र हैं । आपका
 स्थास्थ्य बहुत अच्छा है । आप मदैय प्रसन्न मुख रहते हैं ।
 आयु आपकी ५५ वर्ष का है । आपका और परिश्रम न इन्हें इस
 उच्च पद पर पहुँचाया है । टेलीग्राफ के मुख्य प्रबन्धकर्ता मिस्टर
 राजे हैं । इनका भी टेलीग्राफ के पुराना संबंध है । पर टेलीग्राफ
 के मुख्य स्तम्भ मान जाते हैं । टेलीग्राफ की उन्नति का विशेषांश
 आप ही के उद्योग की बर्दाश्त है । है मैनेजर, ये समय पड़ने
 पर आप सम्पादकी भी करते हैं । युद्ध में सैनिक सहायक दाता
 ओं का कार्य्य भार आपही के जिम्मे रहता है । आप स्वयं जा
 कर समाचार भेजने का प्रबन्ध करते हैं ।

विलायती समाचार पत्रों में बड़ा जोर है । ये भले को बुरा
 और बुरे का भला बना सकते हैं । उनकी कुलम में ऐसी शक्ति है
 कि वह महाभारत करा सकती है, और यदि चाहे तो शान्ति भी
 स्थापन कर सकती है । उनसे देश का बड़ा उपकार भी हो
 सकता है । दक्षिण अफ्रीका के युद्ध के समय टेलीग्राफ ने विधवा
 और अनाथ बालकों के लिए जो अपील की थी उस से
 ४० लाख रुपया इकट्ठा हुआ था । लन्दन के कई अस्पतालों को

हिन्दी गद्य वाटिका

का अन्दाजा किया जा सकता है। पर इस थोड़े से खर्च के कारण आज उम्र दुकान की आमदनी सहसा रुपए रोज की है। लाड बर्नहम के निकटवर्ती गिश्तेदार मिस्टर हैरी नासन टेलीग्राफ के सुपरिण्टेण्डेंट हैं। याने देख गेज का कुल भार इन्हीं पर है। लागन साहेब का इस विषय का अनुभव भी अच्छा है। वे सम्पादक भी रह चुके हैं। सर्प साधारण में उनकी इज्जत अच्छी है। टोरी पत्र से सम्बन्ध रखने पर भी सर्प दलों के लोग उनसे प्रसन्न रहते हैं। सन् १९०६ के सम्पादक-सम्भलन के समय दोनों दला ने उन्हें अपना मुख्य प्रतिनिधि चुना था।



हिन्दी गद्य याटिका

और बनारस के पास ता फाइ चीज ही नहीं। उन्हें तो पार्क कहना ही अन्याय है। यहाँ सबसे सुन्दर और सुहावा चार पांच पाक है। हार्ड पाक सरमा शिरामणि है। इसका रकबा ६३८ एफड है। गड इससे रोजेण्टन पार्क, मॉट जेम्स पार्क और पिन्सवरी पार्क है। परन्तु इन सरमा रकबा १०० एफड से भी कम है। पार्कों का पूरा यत्न करना फटित है। उन पर एक पोथी लिखी जा सकती है।

पास एक उच्च श्रेणी क गग का रहते हैं। परन्तु गग और पार्क में जो भेद है वह यागे मालूम होगा। हर एक पार्क के चारों ओर लाह क खम्भा म तार गिच हैं। मौक्रे मौक्रे पर सूत्रमूर्त फाटक बने हैं, जिनमें म गाडी पगैरह आगमानी से आ जा सकती है। फाटक म तीन दरवाजे हाते हैं। बीच वाला दरवाजा गगरी आगि के लिए और गानू गाल पैदल आने जाने वालों के लिये हैं। ये दरवाजे कुठ तग हाते हैं। हर एक पर "बाहर जाने का रास्ता" और "अन्दर आने का रास्ता" बड़े बड़े मोटे अक्षरों म लिखा रहता है। दरवाजे पर पुलिस या कौंटी कौंसिल का चपरासी देग रख के लिये खड़ा रहता है। आने जाने वाले चुपचाप अपने अपने रास्तों में गिना कहे निकलते या घुसते चल जाते हैं। फाटक पर पाक खुलन या बन्द होने का समय लिखा रहता है। जाडा में, जल्द दिन डूबने से, कुरीय सवा पांच बजे पाक बन्द हो जाते हैं।

सेक्टरों ने हम से एक दिन कहा कि कलकत्ते जैम शहर में भी यह बान नहीं है ।

पार्क के अगत अलग स्थाना म पानी पीन फा त्त लगे है । इन नत्ता के खम्भे उड़ मुन्दर उन हैं । हर एक नत्त पर वा या चार छोटे छोटे कटार लाहे फी जन्जोर से बंध पड़े रहते हैं, जिनमें जिसकी तशायत चाहे पानी पीना जाय । पानी सदैव गहता रहता है । बीच बीच म बडे बडे लम्बे चाँड हरी दूर से टैंक हुए खेतनुमा गूबमुरत टुकडे छूटे हुए हैं, जिन पर लाग बैठ या लेटे हुए दिग्वाई देते हैं । प्रँठन का पार्क भर मे रँचें पडी रहती हैं । घास बडी नहीं हान पाती, बराबर समय समय पर काट दी जाती है । तरह तरह क फूल और पौध आदि अलग अलग क्यारियों में लगे हुए उड़े प्यार लगते हैं । परन्तु यहाँ क फूल सुग्रास मे बडे मन्द हात है ।

कुल पार्क बहुत साफ रक्खा जाता है, कूडा कचडा लश मात्र को भी नहीं रहन पाता । गहृत मे नौकर इसी काम पर नियत है । जगह जगह रहीं कागज रगैरह डालन के लिए लोह की टाकरिया लटकी रहनी हैं, जिन पर "रहीं कागज" लिखा रहता है । कोई गलती मे कागज यहाँ यहाँ डाल द ता नौकर उसी दम उसे उठा लेते हैं । ये लाग हाथ म गज डड गज लम्बा लोहे का नुकीला पतला टुकडा लिथ फिरा करते हैं । जहा काई कागज का टुकडा देखा झट उसकी नोफ से उठा लेते हैं । वृक्षों

सेन्ट्रैरी ने हम से एक दिन कहा कि यत्कत्ते जैम शहर में भी यह रात नहीं है ।

पार्क के अगल अतग गगाना में पानी पीने का नल लगे हैं । इन नला के सम्भे ए सुन्दर उन हैं । हर एक नल पर ओ या चार छोटे छोटे फटारे नाहे की झन्जोर में उँध पड़ रहत हैं, जिनम जिसकी तयायत चाह पानी पीया जाय । पानी सदैव बहता रहता है । बीच बीच में उड़ उड़ लम्बे चाँड हरी दूय से दँड हुए खेतनुमा गूबसूरत टुकड़े छूटे हुए हैं, जिन पर लाग बँडे या लेटे हुए दिखार्इ दते हैं । बँडेन का पार्क भर में उँय पड़ी रहती हैं । घास बड़ी नहीं हान पाती, उरावर समय समय पर काट दी जाती है । तरह तरह के फूल और पौध आदि अलग अलग क्यारिया में लगे हुए उड़े प्यार लगत हैं । परन्तु यहाँ के फूल सुवास में उड़े मन्द हान है ।

कुल पार्क बहुत माप रक्खा जाता है, कूडा कचडा लश मात्र का भी नहीं रहने पाना । बहुत मे नौकर इसी काम पर नियत हैं । जगह जगह रही कागज उगैरह डालने के लिये लाहे की टाकरिया लटकी रहती हैं, जिन पर "रही कागज" लिखा रहता है । काइ गलनी से कागज यहाँ यहाँ डाल द ता नौकर उसी दम उसे उठा लेते हैं । ये जाग हाथ में गज डट गज लम्बा लोहे का नुकीला पतला टुकड़ा लिखे किरा करते हैं । जहाँ काइ कागज या टुकड़ा देखा झट उसकी नोक से उठा लेते हैं । यूसी

रहता है और समय समय पर बदल दिया जाता है। यह पानी नला द्वारा आता जाता है। इन नहरों में दस गीस पचास छाटी डाटी। किरितिया पटी रहती है। जो फी घटे अभुन किराण पर मेर करने के लिए लोग घुमाते फिरते हैं।

इनका किराया यहीं एक आना, यहाँ दो तीन आने घटा है। एक एक म चार छ नौजमान लड़ी-जेण्टलमैन बैठ कर हवा खाने फिरते हैं। नागा का बंखव चलाते हैं। किरिती खड़ी हाने की जगह घड़ी लगी रहती है, जिसे देख कर लोग अपना समय पूरा हो जान पर बाहर आ जाते हैं।

जलाशय के सिनार, कतार में पीठदार उच्च पड़ी रहती हैं, जिन पर सी पुम्प बैठ झील की पहार देखा करते हैं। बाँड को अपने छोटे डाट प्रचा को सुन्दर गाडियों में रखते चारों ओर न्यच्छ हवा खिलाने फिरते हैं। एक आध शौकीन लेडी या जेण्टलमैन जर्जर से बंधा हुआ कुत्ता लिये घूमता है। उधर कुछ दूर चल कर गड राजा बजता है, जहाँ सैकड़ों नर-नारियाँ बड चार से राजा सुनते हैं। गैण्ड के आस पास कुसिया पडी रहती है। जिसे इन पर बैठन की इच्छा हो एक आना दे कर बैठ सकता है। साथ ही उसके जो गीत गाया जाता है उसका एक छपा हुआ परचा मिलता है। जो पैसा नहीं देना चाहते वे दूर खड़े रहकर सुनते हैं। बहुत सा रुपया इस प्रकार इकट्ठा

३४

भगवान् बुद्ध का उपदेश और

उनकी शिष्य मण्डली

लेखक—श्रीयुत लक्ष्मीधर वाजपेयी

[श्री० लक्ष्मीधर जी कानपुर जिले में मैथा नामक गाँव के रहने वाले हैं। आपका जन्म मन् १८७७ ई० में हुआ था। १४ वर्ष की उम्र में आपने स्कूल छोड़ दिया था। इसके बाद आपने अपने ही उद्योग से इतनी उन्नति की।

आप श्रीयुत माधवराव सप्रे के साथ 'हिन्दी कैमरी' का संपादन करते रहे। फिर कोई ६ वर्ष तक अंगरे के 'आथ मित्र तथा पून के 'हिन्दी त्रिप्रमय जगन्' का संपादन किया। अब कुछ समय है

जब दूसरी बार बुद्धदर में विन्धसार की भेंट हुई तब विन्धसार स्वयं उनका शिष्य बन गया। विन्धमार उनका बड़ा भक्त था।

राजगृह के पास सज्जय नामक परित्राजक रहता था। उसके ढाई सौ शिष्य थे। इन में सारिपुत्र और मौद्गलायन नामक दो बड़े विद्वान् ब्राह्मण थे। इन दोनों ने परस्पर निश्चय किया था कि जिसका मोक्ष मार्ग पहले प्राप्त हो वह दूसरे को भी उससे परिचित करे। सयाग की रात हुई कि एक बार भगवान् बुद्ध का अश्वजित् नामक शिष्य भिक्षाटन करता हुआ राजगृह की ओर आया। उसका देखकर उपयुक्त सारिपुत्र नामक ब्राह्मण ने उससे पूछा—

“भाई, आपकी मूर्ति प्रशान्त और वान्ति शुद्ध तथा उज्ज्वल दिखाई देती है। कहिए, आप किससे शिष्य हैं ? आपका धर्मग्रन्थ कौन सा है ?”

अश्वजित् ने उत्तर दिया—“शाक्यप्रणी गौतम बुद्ध हमारे गुरु हैं। उन्हीं का धर्म हमने ग्रहण किया है।” सारिपुत्र ने पूछा, “आपका धर्म का क्या सिद्धान्त है ? इस पर अश्वजित् ने यह श्लोक कहा—

य धम्मा हेतुप्पभवा हेतु तेसा त्तागतो ।

तेसां च यो निरोधो एव यादी महासमनो ॥

जानी ग्रहन्त हैं। क्या आप अपने प्राणों की रक्षा नहीं कर सकते ?” मौद्गलायन ने उत्तर दिया, “महाराज, यह काम कुछ कठिन नहीं है। परन्तु इन अगट में पड़ने की मुझे कोई आशंका ही नहीं है, क्योंकि अपने पूरे कम फलानुसार अब मुझे स्वयं ही इस सप्ताह में अपनी दह त्याग करनी पड़ेगी।” कहते हैं कि मौद्गलायन ने सचमुच ही उस सप्ताह में अपनी दह त्याग कर दी। अपने गुरुभाइ मौद्गलायन की निराशंका सुन कर सारिपुत्र ने भी अपनी दह त्याग कर दी। सारिपुत्र नालन्द में रहता था। भगवान् बुद्ध के यह शिष्य प्रसिद्ध शिष्य थे। वे इनका अग्रश्रावक कहते थे।

भगवान् बुद्ध का पुत्र राहुल भी उनके मुख्य शिष्या में था। उसके उन्हीं किस प्रकार धर्म की दीक्षा दी, इसकी कथा बड़ी विचित्र और करुणोत्पादक है। कहते हैं कि एक बार जब भगवान् बुद्ध अपने धर्म का प्रचार करते हुए अपनी जन्मभूमि कपिल वस्तु में पहुँचें तब उनके पिता राजा शुद्धोदन राजसी ठाट बाट के साथ उनमें मित्रता प्राप्त। उस समय राजा शुद्धोदन ने जब अपने पुत्र का भिक्षा पात्र लिए हुए भिक्षुक के रूप में देखा तब वे बहुत लाज्जित और क्रोधित हो कर बोले, ‘वत्स, तुमने हमारे राजकुल को कलङ्क लगाया है। क्या तुम समझते हो कि हम तुमको और तुम्हारे शिष्या को अन्न देने

उसको भीतर से बैरन कर रहा था। पत्नी दशा में ग्राह्य रमणीयता में उसको सुख फ़ैम मिल सफ़ता था ? राजवैद्य जीवक राजा के पास हाँ पठा ग। उसने राजा के मन की दशा को ताड़, फिर बहुत ही शान्तिपूण शब्दों में राजा के सामने बुद्धदेव की महिमा का उगहन किया तथा उनके शरण में जाने का राजा को उपदेश किया। राजा तुरन्त ही हाथी पर सवार होकर बुद्धदेव के दर्शन को गया और भगवान् बुद्ध के उपदेश से उसको अनुपम शान्ति का लाभ हुआ। इस प्रकार राजा अज्ञात शत्रु ने बुद्धदेव की शिष्यता स्वीकार की।

वैद्य विद्या में जीवक अत्यन्त ही कुशल था। अपरमार, यक्ष्मा, कुष्ठ इत्यादि असाध्य रोगों से पीड़ित सैकड़ों रोगी दूर दूर में उसके पास आया करते थे। धनाढ्य रोगी द्रव्य की बड़ी बड़ी राशियाँ उसके सामने रख देते थे, पर राजवैद्य जीवक का द्रव्य की क्या परवा ? बौद्ध धर्म पर उनकी विशेष श्रद्धा थी, अतएव पहले वह बौद्ध भिक्षुओं को ही देख कर उनका इलाज मुफ्त में करता था। इसका परिणाम यह हुआ कि अनेक रोगी कपट से बौद्ध भिक्षु बन जाते और जीवक के इलाज से रोगमुक्त होत ही बौद्ध धर्म का त्याग कर देते। इससे बौद्ध भर्ता में ससर्गज रोगों की वृद्धि होने लगी। अतएव बुद्धदेव को यक्ष्मा, अपरमार, कुष्ठ इत्यादि रोगों से पीड़ित लोगों के लिए सघ में प्रवेश कराने का कठोर निवध करना पडा।

“हे शिष्य, तू जिस देश में धर्म प्रचार के लिए जा रहा है, वहाँ के लोग बहुत ही दुष्ट, कट्टर और अत्याचारी हैं। वे जरा तेरी निन्दा करने लगेंगे अथवा तुझसे अपशब्द कहने लगेंगे तब तू क्या करेगा ?” पूर्ण ने उत्तर दिया—

‘ मैं बिल्कुल चुप रहूँगा ।’

“और यदि वे पकड़ कर तुझको पाँटेंगे तो तू क्या करेगा ?”

‘ मैं उनकी बदले में नहीं मारूँगा ।’

“अच्छा, यदि वे तुझे पकड़ कर तेरा रथ करना चाहें तो ?”

मैं उनकी अन्याय दूँगा, क्योंकि इसमें मैं ससार के त्रिभिन्न तापों से अनायास ही मुक्त हो जाऊँगा। अतएव मैं उनके प्रयत्न में बाधा नहीं डालूँगा ।”

पूर्ण का उत्तर सुन कर बुद्धदेव बहुत प्रसन्न हुए। यह सोच कर कि धर्म प्रचार करने के लिए उसे ही दृढ़ और सहनशील पुरुष की आवश्यकता है, उन्होंने पूर्ण का आशीर्वाद दे कर विदा किया।

पूर्ण अपने काय में पूर्णतया सफल हुआ और धर्म प्रचार का काय बड़ी योग्यता के साथ उसने किया।

अब बुद्धदेव के एक पट्ट शिष्य का कुछ वृत्तान्त दे कर हम यह लेख समाप्त करेंगे। इस शिष्य का नाम था आनन्द। आनन्द ने भगवान् बुद्ध से कितने समय और कैसे दीक्षा ली,

पिण्डक और पुण के समान श्रेष्ठी भी उनके शिष्य थे। यही नहा, बटि उनक शिष्या में मनीत नाम का एक भट्ठी था, अगुलीमाल नामक एक शोधिया (चारी का व्यवसाय करने वाला), श्याति नामक एक मट्टगा, नन्द नामक एक ग्वाला और उपाता नाम का एक नाह था। इसी प्रकार अनेक निम्न श्रेष्ठी के लोग उनके उपदेशों से कृताथ हुए।

भगवान् बुद्ध के शिष्य दो श्रेणियों में विभक्त थे। एक तो वे लोग जो गृहस्थाश्रम छोड़ कर सन्यास दीक्षा लते थे। इनको भिक्षु कहते थे। दूसरे वे लोग जो गृहस्थाश्रम में रह कर ही उनके उपदेशों का पालन करते थे। इनको उपासक कहते थे। राजा विम्बसार, कासलराज प्रसेनजित, वैश्राज जीवक, श्रेष्ठी अनाथ पिण्डक इत्यादि द्वितीय श्रेष्ठी के शिष्य थे।

पुरुषा की भाँति अनक लियाँ भी बुद्धद्वय के सम्प्रदाय में सम्मिलित हुई थीं। वे भी उठ उत्साह से बौद्ध धर्म का प्रचार करती रहती थीं।



रविवार छुट्टी का दिन है। भारत उप में छोटे छोटे उम्र जो स्कूल में पढ़ने हैं, व भी यह बात जानते हैं। रशिया और अफ्रीका में जग जग इमाइ लागों का राज्य है, सब वही स्कूलों और दफ्तरों में रविवार का छुट्टी रहती है। परन्तु रविवार की छुट्टी किस तरह मनानी चाहिये, यह बात ईसाई धर्मावलम्बियों के बीच रह बिना, अच्छी तरह नहीं अनुभव की जा सकती। रविवार की छुट्टी मनाने के लिये शिकागो में कैसे कैसे स्थान बनाये गये हैं और किस प्रकार यहाँ वाले जीवन का आनन्द लूटते हैं, इसका संक्षिप्त हाल इस लेख में सुनाते हैं।

ईसाई धर्म में रविवार को काम करना मना है, इसलिए सब दुकानें, पुस्तकालय, कारखाने आदि इस दिन बन्द रहते हैं। क्या निधन, क्या धनवान्, क्या नौकर, क्या स्वामी, क्या बालक, क्या बृद्ध, क्या स्त्री, क्या पुरुष, सब के लिये आज छुट्टी है। साढ़े दस ग्यारह बजे, नियत समय पर, प्रातः काल प्रायः सब लोग अपने अपने गिरजा घरों में जाते हुए दिखाई देते हैं। वहाँ ईश्वराराधना करने के बाद घर लौटकर भोजन करते हैं। फिर कुछ आराम करके सैर का निकलते हैं।

शिकागो बहुत बड़ा शहर है, समस्त के बड़े शहरों में इसका तीसरा नम्बर है। यहाँ एक 'फील्ड म्यूजियम' अर्थात् राजाधर घर है। यह मिशिगिन झील के किनारे, शिकागो

सबसे अधिक मक्षम प्राणी ही ममार में बाकी रहते हैं, इस सिद्धान्त की पुष्टि इन दृश्या का देखते ही हो जाती है। जय हमने इन चीजा का दखा, तब तत्काल हम यह विचार हो आया कि क्या भागत रामियां का नाम, उनकी चीजें, उनका इतिहास आदि सब कुछ नष्ट होकर सिर्मा दिन-तन्दन के अनायत-गर में ही ता न रह जायगा।

इस अजायब घर के मध्य में कोलम्बस की दीधकाय मूर्ति विराजमान है। इस जिनोंआ निगसी फालम्बस की मूर्ति को देख कर दशक के मन में भाति भाति के विचार उत्पन्न होने लगते हैं और एक अद्भुत दृश्य आगा के सामने घूम जाता है। पुराने अमेरिका और आज के अमेरिका में कितना अन्तर है। यहा के वे प्राचीन निगसी रही गए। पिछली तीन शताब्दियों में यहा भूमि का कैसा रूप बदला है। कहा यूरोप। कहा अमेरिका। हजारों कास का अन्तर। भारत वर्ष की तलाश में एक पुरुष भूल स इधर आ निफलता है। उसका आना क्या है, यमराज के आने का सन्देश है। हजारों वर्षों से रहने वाले, स्वतन्त्रता से विचरने वाले, क्या पशु, क्या पक्षी, क्या मनुष्य सभी तीन ही शनान्द्रिया के अन्दर म्वादा हो जाते हैं। करोड़ों भैसे अमेरिका के जङ्गल में न जाने कब से आनन्द पूरक विचरते थे, पर आज उनका नाम निशान तक नहीं मिलता। उन सब जीवा न क्या अपराध किया था ? क्या एक दूसरे देश में

को देखिए तो स्वतन्त्रता उनके माथे पर जगमगा रही है।
 तब युवा अपनी प्रियतमाओं के साथ इधर से उधर, उधर से
 इधर, घूमते और बातलाप करते हुए क्या ही भले मौलूम
 होते हैं। मिशिगन झील भी उनके इन भावों को देख कर
 प्रसन्न मालूम होती है। वह अपना स्वच्छ शीतल पवन के
 झोंका में उन्हें आशीर्वाद सा दे रही है। जल की तरफें छोटे
 छोटे बालकों को देखकर उनसे मिलन के लिए, बड़े आर्ह्राद से
 आगे बढ़ती है, परन्तु तत्काल ही यह सोचकर कि शायद
 कुछ वैश्वदयी न हुई हो, पीछे हट जाती है। इस समय भगवान्
 सूर्य अपने दिन के मध्य को पूरा कर पश्चिम की ओर गमन
 करते हैं।

इस अजायब घर के सिवा और भी बहुत से स्थान
 शिकागो निवासियों का रविवार मनाने के लिए हैं। कितने
 ही उद्यान पसे हैं, जहां पियानो वाजे तथा मन उहलाने के
 और कई सामान रखे रहते हैं। वहां जाकर लोग बैठते हैं,
 संगीत सुनते हैं, और आनन्द में मग्न होकर घर आते हैं।

यहां एक उद्यान है जिसका नाम "हम्बोल्ड पार्क" है।
 इसमें नहर के ढङ्ग के, जल के उब बूटे और लम्बे कुण्ड हैं,
 जिनमें जल भरा रहता है और छोटी छोटी नावें पानी पर तैरा
 करती हैं। ये नावें खेल के लिए हैं। ग्रीष्म-काल में यहाँ नावों
 की दौड़ होती है। रविवार के दिन

तिम्न उद्यान भी बहुत प्रसिद्ध है। इनमें अमेरिका की
 विख्यात याज्ञा शीर-शर घाण्ट की मूर्ति है। अरवाहूँ का
 इस देश का हातहास के शाता को एक भयंकर युद्ध का स्मरण
 कराते है। यह युद्ध गुतामी की प्रथा को उन्ध करने के निर
 आपस में हुआ था। अमेरिका के उत्तर के लोग चाहते थे कि
 गुतामी का न्यायार उन्ध हो जाय। उनका यह सिद्धान्त था
 कि न्याय की दृष्टि से सब आधुमी बराबर हैं, जीवन और
 स्वतन्त्रता के स्वाभाविक नियमों में सरका हक एकसा है। वे
 नहीं चाहते थे कि अमेरिका जैसे स्वतन्त्र देश में मनुष्य को
 बकरियों की तरह बिके। इस सत्य सिद्धान्त की रक्षा के लिए
 एक लामहर्षण युद्ध उत्तर और दक्षिण निवासियों में हुआ,
 और परिणाम में सत्य की जय हुई। शूर-वीर घाण्ट इस युद्ध में
 उत्तर वालों की ओर से सनापति थे। वे काले दृष्टियों को बैत
 ही चाहते थे जैसा कि गारे चमड़े वाले अमेरिका के निवासियों
 को। इस महान्मा का रमारक चिन्ह दर्शा को नया जीव
 प्रदान करता है। यह उसे सूचना देता है कि किसी मनुष्य को
 दूसरे पर दुष्टता करने का अधिकार नहीं है, सब मनुष्य इस
 विषय में बराबर हैं। समाज एक यन्त्र की भांति है, मनुष्य
 समुदाय उसके पुत्रों है, अपनी अपनी योग्यतानुसार सब समाज
 के सेवक हैं, किसी से घृणा मत करा: क्या काला, क्या गोर
 क्या ऊँच जाति, क्या नीच जाति—सब एक ही पिता के पुत्र हैं।

हिन्दी गद्य साहित्य

कर सकते। उनके लिए ऐसे स्थानों, उद्यानों और अज्ञात-घरों में घूमने की स्वतन्त्रता है। जब यह प्रिया गया है कि सब को इस देश में आनन्द प्राप्त करने का अवसर मिले। यहाँ जो धन व्यय किया जाता है, वह शारीरिक और मानसिक, दोनों प्रकार की उन्नति के लिए किया जाता है।

यह तो हुई दिन की बात, अब रात की सुनिये। यहाँ पर बहुत से नाटक घर, प्रदर्शनियाँ और समाज हैं, जहाँ अपनी अपनी रुचि के अनुसार लोग रात को जाते हैं। शिकागो में लोग अक्सर रात को गिरजा म भी जाते हैं। वहाँ रात को भी उपदेश, गायन और हरि स्तन होता है। यहाँ एक जगह श्वेत नगर नाम की है, वहाँ बहुत से लोग जाते हैं। इस जगह को श्वेत नगर इसलिए कहते हैं कि यहाँ विजली की शुभ्र रोशनी होती है, जिम्मे रात को भी दिन ही सा रहता है। इसके विशाल द्वार पर बड़े बड़े विजली के प्रकाश के अक्षरों में "दी हाइट सिटी" लिखा हुआ है। विजली की महिमा यहाँ खूब ही देखने को मिलती है। स्थान स्थान पर प्रकाशमय रंग बिरंगे अक्षर-चित्र बन गए हैं, जो मिनट मिनट पर रंग बदलते हैं। इस श्वेत-नगर के भीतर अनेक मनोरंजक स्थान हैं। वहीं पर गाना हो रहा है, कहीं बड़े बड़े स्तरों में नाच हो रहा है, कहीं सर्कस का तमाशा है। दुनिया भर के तमाशा करने वाले यहाँ लाये जाते हैं, और गर्मी के दिनों में वे तीन ही चार मास में

करते हैं। अब यहाँ वालों की जीवन-चया का मिलान यदि हम भारतवर्ष से करते हैं, तो कितना बड़ा अन्तर पाते हैं! उन तमाशों या नाटकों की बात जाने दीजिए, जिनको हममें से बहुत से अच्छा न समझें, पर और ऐसे कितने मनोरञ्जक या शिक्षा प्रद खेल तमाशे हैं, जिनका हमारे स्वदेशी भाइयों को शौक हो? वे अपने अवकाश को—अपनी छुट्टियों को किस तरह बिताते हैं? भग पी कर, ताश खेल कर, पत्तग उडा कर, और व्यर्थ के प्रवचन में लिप्त रह कर। वक्त की ये क्रीमत ही नहीं जानते! यद्यपि कुछ पढ़े लिखे लोग ऐसे हैं, जो इन बुराइयों में बचे हुए हैं, परन्तु ये तीस करोड की जन-संख्या में दाल में नमक के बरोबर भी नहीं। आधी सख्या हमारे देश में मुखर्त स्त्रिया की है, जिनको बाहर निकलने की आज्ञा ही नहीं! जहाँ के निवासी सैकडे पीछे पाँच में भी कम साक्षर हैं, उन्हें दुर्घटनाओं में डूबने से भगवान् ही बचावे।



रग भूमि, कायाकल्प प्रेमाश्रम, निर्मला और येरा मदन। 'इहानियों की पुस्तकों में से मुख्य ये हैं—नय निधि मत्त यरोन प्रेम प्रसून, प्रेम पूर्णिमा प्रेम पचीमी और कर्म भूमि'।

इस समय आप बनारस में जागरण नाम के साप्ताहिक और 'इस' नाम के मासिक पत्र का संपादन कर रहे हैं।]

[१]

दीपाली की सन्ध्या थी। श्रीनगर के घूरा और खंडहरों के भी भाग्य चमक उठे थे। कुम्बों के लडके लडकियाँ श्वेत थालियाँ में दीपक तिण मन्दिर की ओर जा रही थीं। स्त्रीयों में अधिक उनके मुखारविन्द प्रकाशमान थे। प्रत्येक गृह राशनी से जगमगा रहा था। केवल पण्डित दयदत्त का सतघरा भवन अन्वकार में काली घटा की भाँति गम्भीर और भयङ्कर रूप में खड़ा था। गम्भीर इसलिए कि उसे अपनी उन्नति के दिन भूलने न थे। भयङ्कर इसलिए कि यह जगमगाहट मानो उसे चिढ़ा रही थी। एक समय वह था जब कि डप्या भी उसे देख देख कर हाथ मलती थी, और एक समय यह है जब कि घृणा भी उस पर कटाक्ष करती है। द्वार पर द्वारपात की जगह अब मदार और परण्ड के वृक्ष खड़े थे। दीपान खाने में एक मतद्ग साँड अकडता था। ऊपर के घरों में जहाँ सुन्दर रमणियाँ मनोहारी सङ्गीत गाती थीं, वहाँ आज जङ्गली कबूतरों के मधुर स्वर सुनाएँ दते थे। किसी अँगरेजी मदरसे के विद्यार्थी के

सत्ता और राज्या को मिटा दिया और उनके साथ त्रिगरिया का यह अन्न वनपूज परिवार भी मिट्टी में मिल गया। खजाना लुट गया, उही-खाते पसारियां के काम आये। जब कुछ शान्ति हुई, रियासत फिर सँभली तो समय पलट धुमा था। यवन लेख के अधीन हा रहा था, तथा लेख में भी सादे और रगीन का भेद होने लगा था।

जब देवदत्त ने होश सँभाला तो उसके पास इस खंडहर के अतिरिक्त और कोई सम्पत्ति न थी। अन्न निराह के लिए कोई उपाय न था। कृषि में परिश्रम और कष्ट था। वाणिज्य के लिए धन और बुद्धि की आवश्यकता थी। विद्या भी ऐसी नहीं थी कि उही गौरी करते। परिवार की प्रतिष्ठा दान लेन में बाधक थी। अन्तु, साल में दो तीन बार अपने पुराने व्यवहारिया के घर गिन बुलाये पाहुनों की भाँति जाते और जो कुछ विदार्थ तथा भाग-व्यय पाते उसी पर गुजरा करते। पैतृक प्रतिष्ठा का चिह्न यदि कुछ शेष था तो वह पुरानी चिट्ठी पत्रियाँ का ढेर तथा झड़ियाँ का पुलिन्दा, जिनकी स्याही भी उनके मन्द भाग्य की भाँति फीसी पड़ गई थी। पण्डित देवदत्त उन्हें प्राण से भी अधिक प्रिय समझते थे। द्वितीया के दिन जब घर घर लक्ष्मी की पूजा होती है पण्डितजी ठाट घाट से इन पुलिन्दा की पूजा करते। लक्ष्मी न सही, लक्ष्मी का स्मारक-चिह्न ही सही। दूज का दिन पण्डितजी की प्रतिष्ठा के आद्व का दिन था। इस चाहे विडम्बना कहा, चाहे मूर्खता, परन्तु

देख कर भी उसे आनन्द नहीं हुआ। बोला—हाँ, आज दीगली है। गिरिजा ने आँसू भरी दृष्टि से इधर उधर देख कर कहा—हमारे घर में क्या दीप न जलेंगे ?

देवदत्त पूट पूट कर रोने लगा। गिरिजा ने फिर उसी स्वर में कहा—देवो, आज वरस परस के दिन घर अंधेरा रह गया। मुझे उठा दो, मैं भी अपने घर में दीप जलाऊँगी।

ये बातें देवदत्त के हृदय में चुभी जाती थीं। मनुष्य की अन्तिम घड़ी जालमाओं और भावनाओं में व्यतीत होती है।

इस नगर में लाला शङ्करदास अच्छे प्रसिद्ध वैद्य थे। वे अपने प्राण-सजीवन औपधालय में दवाओं के स्थान पर छापने का प्रेस रखते हुए थे। दवाइयाँ फम पनती थीं किन्तु इरतहार अधिक प्रकाशित होते थे।

वे कहा करते थे कि बीमारी केवल रूइसों का ढकोसला है और पोलिटिकल एफानोमी (अथशाख) के इस प्रिलास पदार्थ से जितना अधिक सम्भव हो टैक्स लेना चाहिए। यदि कोई निर्धन है तो हो। यदि कोई भरता है तो मरे। उसे क्या अधिकार है कि वह बीमार पड़े और मुफ्त में दवा करावे ? भारतवर्ष की यह दशा अधिकतर मुफ्त दवा कराने से हुई है। इसने मनुष्यों को असावधान और बलहीन बना दिया है। देवदत्त महीने भर से नित्य उनके निकट दवा लेने आता था। परन्तु वैद्यजी कभी उसकी ओर इतना ध्यान नहीं देते थे

आपका लज्जात दुनिया से महम्म रहना, आपकी खाना तारीकी, यह सब इस सवाल का नफी में जवाब देते हैं। सुनिष्, मैं कौन हूँ। मैं वह शख्स हूँ जिसने इमराज इन्सानी को पर्दए दुनिया से गायब कर देने का बीडा उठाया है। जिसने इरितहारबाज, जौ परोश गन्दुमनुमा बने हुए हकीमों को देख व धुनसे खोद कर दुनिया को पाक कर देने का अज्म बिलज्जम कर लिया है। मैं यह हैरत अंगेज इन्सान जइफुलबियान हूँ जो नाशाद को दिलशाद, नामुराद को बामुराद, भगोडे को दिलेर, गीदड को शेर बनाता है। और यह किसी जादू से नहीं, मंत्र से नहीं, यह मेरी ईजाद करदा 'अमृत विन्दु' के अदना करिश्मे हैं। अमृतविन्दु क्या है इसे कुछ मैं ही जानता हूँ। महिष अगस्त्य ने धन्वन्तरि के कान में इसका नुसखा उतलाया था। जिस वक्त आप वी०पी० पार्सल खालेंगे, आप पर उसकी हकीकत रीशन हो जायगी। यह आवे हयात है। यह मदानगी का जौहर, फरजानगी का अक्सोर, अकल का मुम्गा, और जेइन का सोकल है। अगर वर्षों की मुशायरा वाजी ने भी आपको शायर नहीं बनाया, अगर शावान रोज के रदन्त पर भी आप इन्तहान में कामयाब नहीं हो सके, अगर दलाला की खुशामद और मुयक़िज़ों की नाज बर्दारी के बावजूद भी आप अहाते अदालत में भूके कुत्ते की तरह चक्कर लगाते फिरते हैं, अगर आप गला फाड फाड चीखने और मेज पर हाथ पैर पटकने पर भी अपनी तक्रीर से कोई असर पैदा

[४]

यही अमावास्या की रात्रि थी। उल्लों पर भी सन्नाटा छा गया था। जीवन वाले अपना उल्ला फें नींद न जगा जगा कर इनाम देते थे। हारन वाले अपनी मृष्ट और बाधित खिया नें क्षमा के लिए प्रार्थना कर रहे थे। इनमें घण्टा के लगातार शब्द वायु और अन्तरिक्ष को चीरते हुए जान में आने लग। उनकी सुहावनी गति इस निस्तम्भ अस्थिरता में अत्यन्त भारी प्रतीत होती थी। यह शब्द समीप होते गर्भ और अन्त में पण्डित देवदत्त के समीप आकर उसके गवडहरा में डूब गए। पण्डित जी उस समय निराशा व अध्याह्न समुद्र में गोते खा रहे थे। शाक में वे इस याग्य भी नहा थे कि प्राणां से भी अधिक प्यारी गिरिजा की देवा-दरपन कर सकें। क्या करें ? इस निष्ठुर वैद्य का यहाँ कैसे लायें ? जानिम ! मैं सारी उमर तेरी गुलामी करता। तब इततहार छापता। तरी तगाइयाँ रूटता। आज पण्डित जी को यह हास्यमय ज्ञान हुआ है कि सत्तर लाख की चिट्ठी पत्रियाँ इतनी कौडियों के माल की भी नहीं। पैतृक प्रतिष्ठा का अहंकार अत्र आँखा से दूर हो गया। उन्हा ने उस भखमली बैल को सन्दूक से बाहर निकाला और उन चिट्ठी पत्रियों का, जो राप दाद की कमाई का शेषांश थी और प्रतिष्ठा की भाँति जिनकी रक्षा की जाती थी, व एक एक करके दीया को अर्पण करने लगे।

पर आपके पूर्वजों ने बड़े अनुग्रह किए हैं। मरी इस समय जो कुछ प्रतिष्ठा तथा सम्पदा है सब आपके पूर्वजों की कृपा और दया का परिणाम है। मैं अपना धनक स्वजन से आपका नाम सुना था और मुझ बहुत दिनों से आपके दर्शनों की आशीक्षा थी। आज यह सुअयमर भी मिल गया। अब मेरा जन्म सफल हुआ।

पण्डित देवदत्त की आंखों में आंसू भर आये। पतृक प्रतिष्ठा का अभिमान उनके हृदय का कामल भाग था।

वह क्षीनता जो उनके मुख पर छाई हुई थी थोड़ी दर के त्रिण बिदा हो गई। य गम्भीर भाव धारण करके बोले—यह आपका अनुग्रह है जो पसा रहते हैं। नहीं तो मुझ जैसे कपूत में तो इतनी भी योग्यता नहीं है जो अपना को उन लोगों की सन्तति कह सकूँ। इतने में नीकर ने आंगन में पश रिछा दिया। दोनों आदमी उस पर बैठे और बातें होने लगी, ये बात जिनका प्रत्येक शब्द पण्डित जी के मुख का इस तरह प्रकृतित कर रहा था जिस तरह प्रात काज की वायु फूलों को खिला देती है। पण्डित जी के पितामह ने नवपुरख ठाकुर के पितामह का पचीस सहस्र रुपये कर्ज दिये थे। ठाकुर अब गया में जाकर अपने पूर्वजों का श्राद्ध करना चाहता था, इस लिए जरूरी था कि उसके जिम्मे जो कुछ भ्रण हो उसकी एक एक कौड़ी शुका ही जाय। ठाकुर को पुराने वही-खाते में यह रकम दिखाई दिया। पचीस

इश्वर ने चाहा तो तू अत्र बच जायगी । इस उन्मत्तता में उन्हें एकदम यह नहीं जान पडा कि 'गिरिजा' तो अत्र वहाँ नहीं है, केवल उसकी लोच है ।

देवदत्त ने पत्री को उठा लिया और द्वार तक वे इस तेजी से धाये माना पाय मं पर लग गये हैं । परन्तु यहा उन्हान अपने जो रोग और हृदय में आनन्द की उमडती हुई तरंग को राक कर कहा—यह लीजिये, यह पत्री मिल गई । मयोग की बात है, नहीं तो सत्तर लाख क कागज दीमकों के आहार बन गये ।

आकस्मिक सफलता में कभी कभी सन्देह राधा डालता है । जब ठाकुर ने उम पत्री के लन को हाथ बढाया ता देवदत्त को सन्देह हुआ कि कहीं यह उसे फाड कर फक न दे । यद्यपि यह सन्देह निरर्थक था, किन्तु मनुष्य कमजोरिया का पुतला है । ठाकुर न उनके मनके भाव को ताड लिया । उसने वेपर-धाही से पत्री को लिया और मशाल के प्रकाश में देख कर कहा—अत्र मुझे पूर्ण विश्वास हुआ । यह लीजिये, आपका रुपया आप के समक्ष है । आशीर्वाद दीजिये कि मरे पूर्वजों की मुक्ति हो जाय ।

यह कह कर उसने अपनी कमर से एक बैला निकाला और उसमें से एक एक हजार के पचहत्तर नोट निकाल कर देवदत्त को दे दिये । पण्डित जी का हृदय बड़े वेग से धडक रहा था । नाडी तीव्र गति से बूद रही थी । उन्होंने चारों ओर

गुना प्यारी है ।

वैद्यजी ने लज्जामय सहानुभूति से देवदत्त की ओर देखा और केवल इतना कहा—मुझे अत्यन्त शोक है, मैं सदैव के लिए तुम्हारा अपराधी हूँ । किन्तु तुमने मुझे शिक्षा दे दी । ईश्वर ने चाहा तो अब पेसी भूल कदापि न होगी । मुझे शोक है । सचमुच महाशोक है ।

ये बातें वैद्य जी के अन्तःकरण से निकली थीं ।



प्राचीन भारत के धार्मिक और राष्ट्रीय नेताओं न दिखाइ, वह आश्चर्य जनक है। कराना मनुष्या म एक नाम के प्रेम का सफलता पूर्वक ऐसा दृढ कर दना फोड़ सहज काम न था। इस प्रचार के लिए फूँ सों उषों फा आंदोलन आवश्यक हुआ होगा। उस आंदोलन का इतिहास हम से छिपा हुआ है। परन्तु हम अमरिका में देखते हैं कि आज कल वाशिंगटन और लिंकन के उत्सव मनाए जाते हैं। लिंकन का उत्सव तो एक त्रिकुल नई सस्था का काम है। इसी प्रकार हिन्दू जाति के प्राचीन नेताओं न विशेषत श्रीरामचन्द्र जी के जीवन के वणन को राष्ट्रीय उन्नति का साधन समझा, उसे परिश्रम और उत्साह से सारे देश में इस संग्राम की स्थापना की। हम इस विशाल मनोहर वृक्ष का देखते हैं पर जड़ें हमारी आंखों में छिपी हुई हैं। हिन्दी देश के लिए ता रामायण काव्य ऐसा है, जैसा मटली के लिए पानी। सते जागते उठते बैठते, घर में, बाजार में, हम राम नाम ही सुते हैं। हिन्दी देश के हिन्दुओं का सामाजिक जीवन राम नाम की सुगंध से महक रहा है।

मैं अत्र यह पूटना चाहता हूँ कि प्राचीन भारत के बुद्धिमान और दूरदर्शी राष्ट्रीय नेताओं ने राम चरित और रामायण को क्यों फसी ऊँची पदवा दी? उन का क्या विचार था, और उनका रामायण के द्वारा क्या काम सिद्ध करना था? आज कल भी रामायण हमारे लिये किस प्रकार शिक्षाप्रद है?

बहुत से हिन्दू कहते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी ने अपने पिता के
 वचन का पालन किया, और वह अपने पाप के उड़े आज्ञाकारी
 पुत्र थे। पिता का आदेश मानने अथवा पिता के वचन का सच्चा
 रखने की शिक्षा भी निरुसदह रामायण में पाई जाती है। परन्तु
 ऐसे आधारों पर गुणों के आधार पर किसी देश में किसी
 मनुष्य के लिये न तो उत्सव स्थापित किए और न महा
 श्राद्ध लिखे गए हैं। यह रामायण का आराधन नहीं है। यह
 बस आरम्भ की एक घटना है। पुन यदि पिता का वचन मानने
 में देश और जाति की हानि होनी हो, तो ऐसा आज्ञाकारी
 पुत्र होना भी ठीक नहीं है। पिता की आज्ञा पर सदा चलना
 केवल बालकों का कर्तव्य है। तीस पचीस वर्ष की आयु पान
 पर प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि अपने विवेक के अनुसार
 जीवन व्यतीत करे। भगवान बुद्ध और हकीकतराय ने तो पिता
 की आज्ञा का पालन नहीं किया, परन्तु हम उन का भी आदर
 करते हैं। अतः ऐसे वैयक्तिक कुटुम्ब-सम्बन्ध से रामायण का
 सार हमारी समझ में नहीं आ सकता।

हिन्दुओं में सैकड़ों वर्षों की गुलामी के कारण केवल धार्मिक
 और वैयक्तिक गुणों पर ध्यान देने का सम्भाव पैदा हुआ गया
 है। अन्यत्र राष्ट्र और प्रजातन्त्र शासन प्रणाली के अभाव में जाति
 और राजनैतिक आदेश हमारी समझ में नहीं आते। मैं

अपना गुरु और नेता मानने लग गए। जिन असम्य साधुओं में न तो शरीर का राल और सौंदर्य था, न इतिहास, साहित्य और विज्ञान का परिचय हो, न ता राजनीति को समझने की शक्ति हो और न युद्ध में लड़ने का वीर्य हा, न तो स्त्री का प्रेम और आदर हा और न रालका में स्नेह हो, उन्हें अब धार्मिक नेता और गुरु माना जाता है। जो मुख सारी अभिलाषाओं का त्याग कर, कुटुम्ब, स्त्री, राष्ट्र, जाति पर लात मार, वन में बैठ कर, अपना शरीर का सखा कर, आँखें बन्द कर बैठ जाय और कभी कभी सचेत भी हा जाय, यह ता माना धर्म रूपी हिमालय के गौरी शरर पत्रत पर चढ गया। हम एस ही निकम्ब, टूटे-फूटे, अधूर, अशिक्षित सन्यासिया का 'आदश मनुष्य' मानन जगे। परन्तु रामायण और महाभारत में इस झूठे-आदश का लेश मात्र भी नहीं मिलता। यदि प्राचीन हिन्दुओं का पसी मुखता, नग्नता और शून्यता से प्रेम होता, ता सार भागतवर्ष में हिन्दू सम्यता कभी न फैलती। जब हम रामायण को पढते हैं, तो प्रनीत होता है कि हम आधुनिक यूरोप में हैं। परन्तु जब हम पश्चात्कालिक धर्म ग्रन्था को पढते हैं, तो श्मशान अथवा चिकित्सालय की दुगन्ध आती है। रामायण का मदेश है—“कुछ करा”, परन्तु “अध्यात्मविद्या” की दूसरी पुस्तको का उपदेश है—‘कुछ मत करो।’ यही भेद है।

अस्तु, श्री रामचन्द्र जी में वे कौन-से गुण थे, जिनकी

हिन्दी गद्य-चाटिका

देवेष्वपि न पश्यामि रुद्रिदभिर्गुणैर्युतम्,
श्रूयतां तु गुणैर्गभिर्या युक्तो नरचन्द्रमा ।

अर्थात्, यत्नाया मे श्रेष्ठ, तप और ग्वाध्याय मे सलम, तपस्वी, मुनि श्रेष्ठ राजमीकि ने नारद मे पूछा कि इस ससार में सदगुणों मे अलङ्कृत, गुणिया मे श्रेष्ठ, धर्मात्मा, कृति, सत्यवादी, दृढप्रत कौन रहा जाता है ? उदार आगर मे कौन सपन है, सत्र प्राणियों के हित मे कान रत है, कौन वार, उदार और सुन्दर है ? वह महान् व्यक्ति कौन है, जिसन काय को जीत लिया है, धैरवान् है, जो निष्फलक है तथा जिसके क्रोध उत्पन्न होने पर देवता भी डरते हैं ? कौन उदार है, त्रैलोक्य की भी रक्षा करने मे समर्थ है, कौन प्रजा हित मे रत है, सब गुणा और मपलाया का भाण्डार है ? किस एक व्यक्ति मे लक्ष्मी समग्र-रूप से आश्रित है, और कौन अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र और उपेन्द्र के समान है ? हे नारद, तुम से वास्तव में मैं यहाँ सुनने की इच्छा करता हूँ, क्याकि हे देवर्षि तुम्हीं इस प्रकार के व्यक्ति को जानने में समर्थ हो ।

तीनों काल के जानने वाले नारद मुनि ने राजमीकि के ये वाक्य सुन कर कहा—थच्छा, सुनो । तुमने जिन गुणा का वर्णन किया, वे बहुत और दुर्लभ हैं । इतने दुर्लभ गुणा का एक मनुष्य मे इस ससार में पाना बहुत कठिन है। इन गुणों से युक्त तो मैं देवताओं में भी किसी को नहीं देखता । हाँ, मनुष्यों मे

वह मुनि और इतिहास यह देखते थे कि इस व्यक्ति में शरीर का सौंदर्य भी है, विद्या भी है, और सदाचार भी है। इसी कारण नारद मुनि ने कहा कि ये गुण तो बहुत और दुर्लभ भी हैं। रामायण का प्रथम उद्देश्य यही है कि 'पूर्ण व्यक्तित्व' का ज्ञान हो। यही प्राचीन ग्रीस दश का आदर्श था।

इसके अनिरीक्त प्रत्येक मनुष्य का एक विशेष गुण भी होता है। पूर्ण व्यक्तित्व की परीक्षा में श्रीरामचन्द्र जी ने एक विषय में अर्थात् क्षात्र क्रममें सबसे अधिक नन्दन पाए। आज कल तो ऐसे नपुंसक साधुओं का आदर्श मनुष्य माना जाता है जो तलवार या बन्दूक का दाव कर ही घबरा जायें।

परन्तु प्राचीन भारतवर्ष का यह आदर्श न था। श्रीरामचन्द्र जी की विशेष कीर्ति तो मुद्गल में गीस्ता के कारण ही श्री—पिता का आज्ञाकारी पुत्र होने से नहीं। इस बात का प्रमाण हमें भगवद्गीता में मिलता है। ११ वें अध्याय में श्रीकृष्ण जी सुसार की सब उत्तम वस्तुओं का उगलन करके कहते हैं कि वह सब मैं ही हूँ। जिस प्रकार नदियों में गंगा, मुनियों में कपिल इत्यादि श्रेष्ठ हैं, जैसे हाँ इन शब्दों के साथ साथ ये शब्द भी पाए जाते हैं—“राम शरत्रमृतामहम्”। इस से प्रत्यक्ष है कि श्रीरामचन्द्र जी को ऐसा योद्धा माना जाता था, जैसे आजकल फ्रेडरिक, नेपोलियन, वाशिंगटन, मोल्डके, अनवर पाशा आदि सेनापतियों को माना जाता है। राम का

रहा। प्राचीन ग्रीस देश के महाकाव्य 'इलियट' में भी इसी प्रकार लिखा है कि एक राजा किसी दूसरे राजा की स्त्री का ग्रहण कर अपने साथ ले गया (परन्तु वह स्त्री स्वयं भी जानना चाहती थी) और इस कुर्म के कारण दश वर्ष तक पत्नी लडाइ हुई, जिस में ग्रीस देश का सब जानियों ने भाग लिया और मैनिस भेजे। परन्तु यह मैन प्रियवान कर सकता है कि ऐसे छोटे कारण का इतना बड़ा कार्य हो सकता है।

इतिहास कोई भानमते का गेल नहीं है। बड़ी घटनाओं के बड़े कारण होते हैं। और यदि श्रीरामचन्द्रजी अपनी धर्म-पत्नी को फिर अपने पर ल ग्राण, तो इससे सारी जाति में कृण क्षता का ऐसा दृढ भाव क्या कर उत्पन्न हो सकता था? यदि एक राजा दूसरे राजा से निजी गता के लिये युद्ध करता, तो इस से सारे भारतवर्ष में उसकी ऐसी धूम क्योंकर मच सकती थी? यदि वह अपनी स्त्री का ग्रहण लाण, तो अच्छी बात हुई। यह आनन्द स रहें। यह ग्राइ राष्ट्रीय मेरा नहीं मानी जा सकती, जिसके लिए बड़ काव्य लिख जायें।

राम और रावण के युद्ध के क्या कारण थे? मरी तुच्छ सम्मति में यह राम और रावण की निजी लडाइ नहीं, किन्तु भारतवर्ष की दूसरी अहिन्दू जातियों के साथ हिन्दू-जाति का अन्तिम संग्राम था। उस समय हिन्दू जाति ने उत्तर भारत में अपनी सम्पत्ता स्थापित की थी। इनकी भारतवर्ष में वैसी ही

गया। भारतवर्ष की गङ्गा में कुछ गंगा न रही। यदि आज दक्षिण भारत अहिन्दू होता, तो हमें कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता। दक्षिण में शंकराचार्य, रामानुजाचार्य और दूसरे प्रसिद्ध हिन्दू नेताओं ने जन्म लिया। “पण्डिता दक्षिणात्या” — “दक्षिण के पण्डित प्रख्यात हैं।” — ये शब्द भी प्रायः सुने जाते हैं। दक्षिण के मराठों ने हिन्दू साम्राज्य स्थापित करके हिन्दू सभ्यता की रक्षा की। ये सब फल राम के युद्ध से हमें मिले। दक्षिण ने हिन्दू सभ्यता की जो सेवा की है, उसका आरम्भ वास्तव में इसी राम रावण युद्ध से हुआ।

इस काम में राम ने जो चतुराई दिखाई, उसका वर्णन पढ़ कर तो आज कल के अँगरेज और फ्रांसीसी राजनैतिक नेताओं और सेनापतियों का ध्यान तुरन्त आ जाता है। उन्होंने दक्षिण के कई छोटे छोटे राजाओं को साम, दाम और भेद से अपने साथ मिला लिया। पर कुछ रावण के पक्षपाती भी रहे होंगे। विभीषण का फाड़ लेना बड़ी नीति का खेल था। ऐसी चालें अँगरेजों ने भी भारतवर्ष में प्रयुक्त चली हैं। हम हिन्दू कहते हैं कि विभीषण एक पवित्र और धार्मिक मनुष्य था, जो रावण के पाप को देख कर भाइ का विगधी हो गया। यह हमारी पुरानी साम्राज्य-लालुपता का दृश्य है। वास्तव में विभीषण ने लालच से राम की सहायता की, ताकि लड्डू का सिंहासन उसे मिल जाय। अँगरेजों को कई ऐसे विभीषण

हिन्दी-गद्य-शास्त्र

केवल धार्मिक और नैतिक गुणों का उपदेश न देंगे, अर्थात् महाकाव्य का याम्त्रिक अभिप्राय समझ कर श्रीरामचन्द्रजी की राष्ट्रीय सेवा की ओर भी नवयुवकों का ध्यान आकर्षित करेंगे । यतारामरत्नताजय ।

अपे—विक्न, स्वीडन ।

—हरदयाल



हिन्दी गद्य साहित्य

मनुष्य की अन्वेषणा और विचार परम्परा ज्ञान की किस सीमा तक पहुँच चुकी है, उसकी उमर ख़तर नहीं रहती। उसके लिए उसके पूरे जीवन अन्वेषणमय है। न जान कितना लोग हा गण कैसे कैसे विचार कर गण, पर उस क्या ? यह जा सामने देखना है यही जानता है, और शिक्षा व अभाव के कारण वह अच्छी तरह देख भी नहीं सकता। यह अपने ही फैलाए हुए अन्धकार में गिरना पड़ता है, टेढ़ी मढ़ी पगड़ण्डियों में भटकता फिरता है, यह नहीं जानता कि मनुष्या के श्रम से एक चौड़ा सीरा भाग तैयार हो चुका है।

यहाँ हम पढ़ने के दो पर अत्यन्त प्रत्यक्ष लाभों की आर व्यान दिलाते हैं। यह विषय जैसा उपयुक्त है वैसा ही मनो रक्षक भी है। पहली बात तो यह है कि पढ़ने से इतिहास और काव्य में हमारी गति होती है, और भूत काल की घटनाएँ हमारे हृदय में प्रत्यक्ष हो जाती हैं। इनके द्वारा हमें ससार के बड़े बड़े राज्यों की उत्पत्ति, वृद्धि और पतन का पता चलता है। पढ़ने से हमें विदित होता है कि किस प्रकार मनुष्य जाति की सभ्यता का प्रवाह अभी कुछ दिनों के लिए रुकता, कभी पीछे हटता हुआ, कभी पर ग्यान में रूँधता, कभी दूसरे स्थान पर बहुरता हुआ, कभी कुछ दिनों के लिए उथला और छिड़ला पड़कर फिर अनियाय्य वेग के साथ बढ़ता, गम्भीर होता हुआ, अखड, अतत आगे ही बढ़ता

विचार करते हैं। एक धार्मिक उपदेशक कहता है कि "चाहे एक व्यक्ति को लो, चाहे एक जाति का लो, सत्र में समृद्धि के दिन प्रायः वे ही होते हैं जिनके पीछे घोर विपत्ति के दिन आते हैं।" चाहे चन्द्रगुप्त, मिरन्दर, खुसरो, तैमूर आदि बड़े बड़े विजेताओं को लो, चाहे हस्तिनापुर, पाटलिपुत्र, पर्थेस, रोम आदि की ओर ध्यान दो, बात एक ही होगी। अपनी रक्षा के निश्चय ही न नाश का अकुर रहता है, अपने पराक्रम की भावना और उसे दिखाने की यासना ही से पतन भी होता है। भाग्य के इस अचानक पलटा खाने पर हमें ध्यान देना चाहिये। पर सबसे अधिक ध्यान तो हमें इस विश्वव्यापक नियम की ओर देना चाहिए कि प्रौढ़ता और शक्ति के पीछे के दिनों में जीव में भीतर ही भीतर भाग, विश्वास, अनीति और दुष्पसन का घुन शक्ति को खाने लगता है, अधिक तडक भडक और शान दिखाई पडती है, यहाँ तक कि बाहर से देखने वालों को शक्ति की स्थिरता का अधिक विश्वास होता है। लोक में कहावत प्रसिद्ध है कि जब दीपक बुझने को होता है तब अधिक जगमगाता और भभकता है। पारसियों का प्रताप इतना प्रबल और कभी नहीं दिखाई पडा था जितना उस समय जब क्षयास ने अपनी असख्य सेना लेकर यूनान पर चढ़ाई की थी। पर यथार्थ में पारसी जाति की शक्ति उस समय इतनी क्षीण हो गई थी कि थोड़े ही आघात से ध्वस्त हो

यदि पाठक चाहे ता उनमें से प्रत्येक व्यक्ति उसको तुच्छ चिंताओं से मुक्त करके ऐसी भावमयी सृष्टि में ले जाने के लिये तैयार रहेगा जहाँ मासारिक प्रपञ्चों का लेश नहीं । चाहे कितनी ही घोर निस्तब्धता हो उसके मनों में प्रकृति का मधुर और रहस्यपूर्ण सगीत पड़ेगा, कामल और गभीर वचन सुनाइ देगा । कालिदान अपनी अलौलिक प्रतिभा के रत्न से उसे मंग के साथ अलहापुरी में पहुँचावेंगे, जहाँ—

नित पौन के पेरे किते कहु गदर घूमन घूमत आवत हैं ।
जलबूदन की परखा करके अगनान के चित्र मिटावत हैं ॥
भयभीत से फेरि झरोखन हवै सिमिटे तन बाहर धावत हैं ।
कठि जान को बेगि धुआ गनि के बडे चातुर बेहु कहावत हैं ॥
अथवा भवभूति के साथ जाकर वे उस टडक वन में थोड़ा विश्राम पावेंगे जहाँ—

वहँ सुन्दर घनस्याम कतहुँ धारे छवि घोरा ।
वहँ गिरि खोहन गूँजि, उदत झरनन कर सोरा ॥
सुनसान कहँ गभीर वन, कहँ सोर वन पसु करत हैं ।
कहँ लपट निसरत सुप्त अजगर सास सन तरु जरत हैं ॥
गिरिखोह में कछु जल भरे, कछु छुट्र खात लग्वात हैं ।
अहिस्वेद गिरगिट पियत तहँ जय व्यास सन घनरात हैं ॥
तुलसीदास उसे अपने साथ गंगा उतर कर वन की ओर

ज्ञान का एक ऐसा प्रचुर भांडार हो जाय कि उसमें से समय समय पर जब जैसा अवसर पड़े हम शक्ति, उपदेश और उत्साह प्राप्त कर सकें। इस प्रकार का भांडार अधिकार में रखना उपयोगी और आनंदप्रद दोनों है। बहुत से ऐसे अवसर आ पड़ते हैं जब हमारा जी टूट जाता है और हमारी शक्ति क्षिणिल हो जाती है। सानिष्ठा कि ऐसे अवसरों पर कितना एने पुरुषार्थी महात्मा के उत्साहपूर्ण यत्नों में कितना उत्साह प्राप्त होगा जिसने कठिन संघट और विघ्न मंहे, पर अंत में अपन अध्ययनाय के फल से सिद्धि प्राप्त की। इस यत्न में कितना उत्साह मिलता है—

छाड़िये न हिम्मत, विस्तारिए न हरि नाम,
जाही विधि राख राम, ग्नी विधि रहिये ।'

प्रयत्न में हताश या दुखी व्यक्ति को कितना धैर्य र्थ सह सकता है। यदि उसे कितना एने महात्मा के यत्न सुनने को मिले जो दुःख पड़ने पर कहता है—“इश्वर चाहता है कि हम इस दशा में रहें, हम इस कतव्य को पूरा करें, हम इस व्याधि को भोगें, हम इस विपत्ति में पड़ें, हम यह अपमान और ताप सहें, ईश्वर की जैसी इच्छा। इश्वर की यही इच्छा है, हम या मसार चाहे जो कुछ कहे। उसकी इच्छा ही हमारे लिये परम धर्म है।” बहुत से अवसर आते हैं जब दूसरों की इच्छा के अनुसार कार्य करना, दूसरों की अधीनता म्नीकार करना,

अन्तर है कि मैं आज मरूंगा और आप कल।” इस ‘अभिप्राय गर्भित’ वाक्य से किमका उत्साह नहीं उठेगा, किमका चित्त हट नहीं होगा। कोई छोटा है या बड़ा, यह कोई ज्ञान नहीं। मुख्य बात यह है कि जो जिम श्रेणी में है वह उसके धर्म का पालन करता है या नहीं। साधारण विद्या बुद्धि का मनुष्य भी यदि मयादा का ध्यान रखता हुआ धर्मपूर्वक अपना कार्य करता जाय तो वह उन्नी प्रकार सफल मनोरथ हो सकता है जिस प्रकार काई बड़ा बुद्धिमान् मनुष्य। इस विषय पर मुझे बहुत कहने की आवश्यकता नहीं। पढ़ने का बड़ा भारी अलभ्य और मनोहर लाभ यह है कि उससे चित्त शुभ भावनाओं और प्रौढ़ विचारों से पूर्य हो जाता है। जब कभी जो चाह मनुष्य चुप चाप बैठ जाय और जा कुछ उसने पढ़ा हो उसका चिंतन करता हुआ उपयोगी और आनन्दप्रद विचारों की धारा में मग्न हो जाय। इस के लिये उस किसी प्रकार के बाहरी आधार की आवश्यकता नहीं। गात्रो बैठे रहने के समय—जैसे रत्न, नौका आदि की यात्रा में—हमारे लिए यह एक अच्छा लाभकारी मानसिक व्यायाम रखता हुआ है कि हम किमी अच्छे ग्रंथकार की कोई पुस्तक उठा लें और उस की बातों को, उसकी चमत्कार पूर्ण उक्तिओं का तथा उसके मनोहर दृष्टान्तों को हृदय में इस क्रम में धारण करते जायें कि जब अवसर पड़े तब हम उन्हें उपस्थित कर

२९

मेघ

अनुवादक—श्रीयुत रूप नारायण पाण्डेय

[मेघ और वृष्टि दोनों लेख यह ल के सुप्रसिद्ध लेखक श्रीयुत वकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय की रचना हैं । श्री० रूपनारायण जी का जन्म छत्तनऊ के रानी कटरे में सन् १९४१ में हुआ । आप को स्कूली शिक्षा बहुत कम मिली । आपने अपने ही परिश्रम से अपना ज्ञान बढ़ाया । आप बहुत अच्छे अनुवादक हैं । आपने बहुत सी बंगला पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद किया है । आप इन्दु, माधुरी सुधा निगमानिगम चन्द्रिका आदि कई पत्रिकाओं का सम्पादन भी कर चुके हैं । इनके द्वारा रचित और अनुवादित पुस्तकों की संख्या ६० से ऊपर है ।]

और भैया, घृत्रासुर के वध के समय राम की सहायता में जो मैंने गर्जन किया था, तुम उस गर्जन को सुनने की इच्छा न करना—डर मालूम होगा ।

बरसूंगा क्या नहीं ? देखो, कितनी ज़ही की कलियाँ भर जल क्यों की आशा में ऊपर मुँह उठाए हुए हैं । उन के मुख में स्वच्छ जल में न सींचूँगा तो और कौन सींचेगा ?

परसूँगा क्या नहीं ? देखो नदियाँ का शरीर अभी तक पुष्ट नहीं हुआ । वे मेरी दी हुई जलराशि को पाकर परिपूर्ण हृदय से हँसती हँसती, नाचती नाचती, कलरव करती हुई अनन्त सागर की ओर चलेगी । यह देख कर किसे बरसने की इच्छा न होगी ? मैं नहीं परसूँगा । देखो, यह पाजी औरत मेरे ही दिये पानी को कलसी में भर कर लिये जाती है, और 'आग लगे इस परमने पर, वूँद नहीं टूटती !' कहकर मुझ को ही गालियाँ देती चली जाती है । मैं नहीं बरसूँगा ।

मुझे याद है—

मन्द मन्द नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वा ।

वामश्चाय वदति मधुर घातकस्ते सगर्व ॥

कालिदास आदि जहाँ मरों स्तुति करने वाले हैं, यहाँ मैं क्यों न बरसूँ ? मेरी भाषा को कविवर शैली ममज्ञते थे । जब मैं कहता हूँ—'र्याग फूश शौरसं पार दी थॉस्टिङ्ग फ्लौवर्स', तब उस गम्भीर वाणी के मर्म को शैली जैसा कवि हुए बिना

हिन्दी गद्य यादिका

मुझसे बात चीत करने लगती हैं। मैं भी उनके अलाप से मुग्ध हो रहा हूँ। तुम काइ सम्बन्ध ठीक करके उसके साथ, मेरा विवाह करा सकते हो ?

—[यक्तिम निरुधायकी में]



नीच उतर कर सूखी हुई पृथ्वी का भर द ।

पृथ्वी को डुगा देंगी । पवन को चाटी पर चढ़ कर, उसकी छाती पर पैर रखकर पृथ्वी पर उतरना होगा—झरन के मार्ग में भाती का आकार धारण कर निकलेंगी । नदियों के शून्य हृदय का परिपूर्ण करके, उन्हें रूप का रस्त्र पहना कर, महातरङ्गों से भीषण राजा बना कर, लहर के ऊपर लहर उठा कर हम ब्रीडा करेंगी । आया, सब नीचे उतरें ।

कौन युद्ध करेगा—वायु ! हिंसा ! वायु के कंधे पर चढ़ कर हम दश दशान्तर में घूमेगी । हमारे इस यथा-युद्ध में वायु हमारा घोडा है । उसकी सहायता पावें, ता हम जल थल एकाकार कर दें । हवा की सहायता मिलन से हम बढ़ बढ़ घुमेंगे जो ढा दन की शक्ति रखती हैं । वायु के कंधे पर चढ़कर तारों के तारा के दरवाजा के भीतर घुसती हैं । किसी की बड़े यत्न से विछाड़ हुई शय्या का हम भिगो देती हैं—सोती हुई सुन्दरी के ऊपर जाकर गिर पड़ती हैं । वायु तो हमारा गुलाम है ।

देखो भाई, काइ अकल न नीच उतरना । एका ही हमारा बल है । नहीं ता हम कुछ भो, नहीं हैं । चलो । हम छुद्र यष्टि-मिन्दु हैं, मित्तु पृथ्वी के प्राणा की रक्षा करेंगी । छतों में अन्न उपजावेंगी—मनुष्या के प्राणा की रक्षा होगी । नदियाँ में नावें चलेंगी, मनुष्या का रोजगार चलेगा । तृण, लता, वृक्ष आदि

हमने जल की जाति में जन्म पाया है। परन्तु तो भी हम रग रस करना जानती हैं। लोगों के छप्पर फाड़ कर घर के भीतर झाँकती हैं। स्त्री पुष्प जिस घर में सोये होते हैं, वही छत्त के छेद से भीतर जा कर उनको चौका देती हैं। जिस राह में बहू-वेदियाँ कलसी लेकर पानी भरन जाती हैं, उसी राह में हम फीचड कर रखती हैं। चमली का पराग जो डाल कर भौरों को भूखा मारती हैं। नौकर चाकर कपडा जो कर फैलाते हैं तो उसे फीचड में डाल कर उनका काम उठा देती हैं। हम क्या कम दिखलगी बाज हैं ! तुम सब चाहे जो कुछ कहो, हम रसिका हैं।

खैर इसे जाने दो, हमारा बल देखो। देखो पर्यत, कंदरा, घर द्वार आदि सब को धो कर हम एक नई ही हरी भरी पृथ्वी की रचना कर देंगी। देखो शिथिल, दुर्बल नदी को बूलप्लाविनी, देश को डुगानेवाली, अनन्त-सरङ्ग-सकुला, लगे चौड़े पाट की जल राक्षसी बना दगी। किसी देश में मनुष्यों की रक्षा करगी—किसी देश के मनुष्यों का (बाट के द्वारा) सहार करेंगी—कितन ही जहाजों को ठिकान पर पहुँचा देंगी, और कितने ही जहाजों को डुबा कर ठिकाने लगा देंगी, पृथ्वी को जलमयी बना देंगी। फिर भी हम क्षुद्र हैं ? हमारे जैसा भुद्र और कौन है ? हमारे जैसा बलवान् और कौन है ?

—[“वाङ्मि नियधावली” से]

उम की रक्षा के लिए यों गिडगिडाने की क्या जरूरत है ? दुर्गादास ! औरगजेव क्या हम उधे के भी प्राण लेना चाहता है ?

दुर्गादास—नहीं तो हमके पकड़ने का और क्या उद्देश्य हो सकता है महाराना ?

रानी—एक लडका और एक लडकी—केवल यही सम्पत्ति लेकर उस दिन दिल्ली से निकली थी। राह में लडकी मर गई। अब मरी सम्पत्ति में केवल यही दूध पीना बचा है। मेरे इस सवरेव पुत्र की रक्षा कीजिए महाराना ! ईश्वर आप का भला करेगा।

राजसिंह—पुत्र के लिए कुछ भी चिन्ता न करो महामाया ! मैं अपने प्राण देकर भी इसकी रक्षा करूँगा।

रानी—राना की जय हा !

राजसिंह—दुर्गादास, औरगजेव के अत्याचार की मात्रा धीरे धीरे बढ़ती चली जा रहा है। उन्होंने हिन्दुओं के ऊपर फिर से "जजिया" लगाया है। उसके ऊपर मारवाड़ पति जसवन्तसिंह ने परिवार पर ऐसा दारुण अन्याय ! देखूँ, पत्र लिख कर शापद औरगजेव को ठीक राह पुर ला सकूँ।

रानी—पत्र लिख कर ! अनुनय विनय करके ! घुटने टेक कर, भीख मांग कर ! नहीं महाराना, इस तरह डील पड़कर नहीं। अब की हम बादशाहत की जड़ से उखाड़े बिना मेरे

जात सराव नहीं है। हम सब हा मरने हैं पर नमक हराम नहीं।

राजसिंह—नहीं कासिम, मैं तुम्हारी जाति की निन्दा नहीं करता, बादशाह के भाय तुम्हारी तुलना करता है।

बादशाह इस छोटे वस्त्र को जान लेना चाहत है, और तुम—

कासिम—आहा, कैसा भोला भाग सुन्दर उच्चा है। दखन से जी चाहता है, गाद में लहर प्यार कर लूँ।

राजसिंह—औरदुजेव, तुम विष्ठी के सिंहासन पर बैठ एक निरीह बानक की हत्या करने के लिए व्यग्र हो रहे हो और तुम्हारी ही जाति का यह कासिम उसे प्राण देकर भी उचाने के लिए तैयार है। ईश्वर की शक्ति में कौन बड़ा है औरदुजेव ?

रानी—राना, मैं इस भारी अत्याचार का उदता लूँगी। इसका बदला चुमाने के लिए ही मैं उस दिन और मित्रियों के साथ नहीं जल मरी। इसी के लिए अब तक जिन्दा हूँ। आज केवल इस उच्चे की रक्षा कीजिए।

राजसिंह—मैं कह चुका हूँ, इस के लिए कोई चिन्ता नहीं है। महामाया, तुम अपने लडके का ले कर यहाँ देखटक रहा।

रानी—नहीं राना, मैं यहाँ नहीं रहूँगी। अब यह मरा घर नहीं है। मैं अपने स्वर्गवासी स्वामी के राज्य को लौट जाऊँगी। सम्पत्ति और विपत्ति में, शान्ति और अशान्ति में, जीवन और मरण में, स्वामी का घर ही स्त्री का घर है, पिता का घर नहीं है। मैं मारवाड चली जाऊँगी।

राजसिंह—धन्य हो दुर्गादास ! तुमने मुगलों को मेरा ड से निकाल बाहर कर दिया ।

रानी—धन्य हो दुर्गादास ! तुम बेगम को कैद कर लाए । आज मैं बदला चुकाऊँगी ।

राजसिंह—क्या ! दुर्गादास, तुम बादशाह की बेगम का कैद कर लाए हो ? कौन बेगम ?

दुर्गादास—फारसी बेगम—गुलनार ।

राजसिंह—उन्हें कैद कर लाए ? उसी घड़ी छोड़ नहीं दिया ?

दुर्गादास—राना साहब, मैं कबल सेनापति था । युद्ध में शत्रु के आठमियों का कैद करने भर का मुझे अधिकार था । कैदियों के छोड़ने का अधिकार राजा को होता है ।

राजसिंह—जाओ दुर्गादास, बेगम साहबा को इसी दम छुटकारा देकर इज्जत के साथ बादशाह के पास भेज दो ।

रानी—क्या राना ?

राजसिंह—मन्त्री के साथ हम लार्गा का कुछ झगडा नहीं है ।

रानी—मन्त्री के साथ झगडा नहीं है ! तो फिर मैं ने क्यों आकर आपका आश्रय लिया महाराना ? मुझे ही पकडने के लिए क्या यह भारी चढाई नहीं हुई है ? मैं यदि इस युद्ध में पकड ली जाती, तो बेगम मेरे साथ क्या सलूक करती ?

राजसिंह—हम मुगलों की नीति का अनुकरण करने

समंटे बैठे हैं। आकाश का उग्र सदा पापी के सिर पर ही नहीं गिरता महाराज। पुण्यात्मा के सिर पर भी गिरना है। भूस्वमे पापी का ही घर नही नष्ट होना, बेचारे निरीह लोगों के आपड़े भी मिट्टी में मिल जाते हैं। प्रवज रहिया में शूद्र घास फूस ही इगते हैं, उड़ उड़े पड़ वैस ही सिर ऊँचा किये खड़े रहते हैं। इश्वर का नियम धर्म-अधर्म का विचार नहीं करता—जहा जिसे दुःख, जीण पुराना पाता है, उसी की गर्दन पहले दवाता है।

राजसिंह—[शान्त भाव से] महामाया ! जोश में आकर ईश्वर का विचार करने के लिए तैयार न होओ—निश्चय करो, इश्वर के नियम में अन्त का अधर्म का अक्षय पतन होगा।

रानी—क्या हागा ? मैं तो आज तक नहीं देखा राना ! मैंने तो आज तक यही देखा है कि सरलता सदा से चालाकी के पैरों पड़ कर भीख मांगती आती है, चालाकी ने एक धार उसकी आर साँव उठा कर देखा भी नहीं। सत्य सदा से झूठ की गुलामी करता है—अपने मस्तक को ऊँचा नहीं कर सकता। मैं सदा से न्याय की जगह पर अन्याय की विजय पताका फहराती हुई देख रही हूँ। मैं सदा से धर्म के टूटे मन्दिर में अधर्म का विजय ध्वनि सुनती आ रही हूँ। पुण्य के हरे भरे राज्य के ऊपर से भयानक रक्त-रजित रहिया लहराती देख पक रही है। घूस, अत्याचार झूठ, विश्वासघात आदि से पृथ्वी परिपूर्ण हो रही है। तब

हिन्दी गद्य-याटिका

बहुत से लेख लिखने के अतिरिक्त मैं न अथ तक तीस में ऊपर पुस्तकों की रचना संपादन और अनुवाद किया है। साहित्य सेवा में ही मेरी रोटी चलती है। आज कल मैं नात-पाँत तोड़क मण्डल, लाहौर, के मुख-पत्र 'युगान्तर' का संपादन अर्धतनिक रूप में करता हूँ और कृष्ण नगर, लाहौर में रहता हूँ।]

हिन्दुओं का जल पर विशेष प्रेम है। इनके तीर्थ और तपो-वन प्रायः सब के सब जल के ही किनारे हैं। हमारा ख्याल है कि हिन्दुओं के समान ज्ञान करने वाली जाति सत्सार में और दूसरी नहीं। फ़रोडा हिन्दू ऐसे हैं जो बिना ज्ञान किए अन्न जल नहीं ग्रहण करते। एक दिन एक मुसलमान हकीम जी ठीक ही कह रहे थे कि हिन्दू रोगी चिकित्सक से जिस बात की बार बार आज्ञा माँगता है वह ज्ञान है। मुसलमान रोगी कहता है, हकीम साहब, मुझे एक आध चोटी मांस खाने की आज्ञा दे दीजिए। इसके विपरीत हिन्दू कहता है, हकीम जी, ज्ञान किए बिना मुझे भूख ही न लगेगी, और नहीं तो मुझे हाथ पैर धोने की तो अनुमति अवश्य दीजिए। इस छोटी सी बात से दोनों धर्मों के मानने वालों का मनोभाव स्पष्ट मालूम हो जाता है। हिन्दू-स्त्रियों में कार्तिक ज्ञान की बड़ी महिमा है। बची बूढ़ी सभी कार्तिक-ज्ञान करती हैं। जिन गाँवों अथवा नगरों के निकट नदी है, वहाँ की स्त्रियाँ प्रातः काल उठकर

हा गण हैं और आशा हानी है कि शीघ्र ही नदी तक सारा माग आयाद हो जायगा। इस सड़क पर लोगों ने भजन पूजा आदि क लिये देगाहय रनरा लिये है, साथ ही कुएँ भी। एक वेद मंदिर और दुमरा विहारी भजन दो प्रसिद्ध जगहें हैं। यहाँ लोग "पायाम स्नान और सध्या वदन करते हैं।

लाहौर पेसी जनासीण महानगरी में रहते हुए प्रात काज वायु सेवन के लिये न निकलना रोग और मृत्यु को अपन यहाँ निमग्न देना है। मैं जय में लाहौर में आया हूँ, रोज सवेर नदी पर जाता हूँ। मैं पाँच परस से देख रहा हूँ कि जा लाग सन् १६०० में नदी पर जाते थे वही अब भी जाते हैं। इन में कुछ लोग ऐसे हैं जो राहों महीने निरन्तर प्रात फाल नदी पर पहुँचते हैं। इन पर उषा और शीत का कुछ प्रभाव नहीं पडता। परन्तु इनकी मरणा है बहुत याडी। इन से अधिक सरया उन लोगों की है जो ग्रीष्म और उषा-ऋतु में ही जाते हैं, पाँच माघ की कडकडाती सरदी में इनके दशन नहीं हाते। इन स भी उदर सरया उन फसली बटेरा की है जो रविवार, सक्रांति या अमावास्या आदि किसी विशेष दिन ही नदी की मछलिया का दशन देन जाते हैं। लाहौर में मुसलमानों की सरया हिन्दुओं से अधिक है। परन्तु नदी पर जान वालों में रूमी टोपियाँ और बुरकों की शकत क्वचित ही देख पडती है।

“जय सीताराम ! जय सीताराम ! घुटनों तक धोती, सिर पर दो तीन पेंच का साफा और हाथ में डोरी लोटा लिए ये निलम्बधारी मजान जा “जय सीताराम ! जय सीताराम” कहते जा रहे हैं, कौन है ? जरा ठहरिए, इनका आपको तमाशा लिखा है। “भक्त जी, जय राधेश्याम !” भक्त जी ठहर गए और बाले—“ भते लाग, तू लडाईं लेना चाहता है ? राधेश्याम कहा नहीं कि मुक्त हो गया नहीं। तू क्या चाहता है कि मैं मुक्त हो जाऊँ और तू मरा लाटा डोरी छान तै ! सीताराम, सीताराम, कह । सवेर सवेरे क्यों लडाइ माल लेता है ?” इतने में एक और आवाज आई—‘भक्त जी, राधेश्याम !’ भक्त जी फिर बनावटी मोच से यही गतें उहने लगे । नदी तक पहुँचते पहुँचते न मालूम कितने मनुष्य इन्हें इसी प्रकार ‘राधेश्याम’ कह कर छेड़ेंगे ।

उधर देखिए, एक भक्त जन कुत्तों और कौओं को रोटी के टुकड़े ढाल रहा है । दखना, कौए कैसे उड़ उड़ कर टुकड़ों को दबोच रहे हैं । ऐसे कई भक्त नित्य बलिचैश्य देव-यज्ञ किया करते हैं ।

‘दातून ! दातून !’ उधर देखिए एक भक्त लाला जी सिर पर दातूना का बड़ा सा गट्टा रखे राह चलतों की दातूनें गँदते चले आ रहे हैं । आप उस स्वर से ‘दातून ! दातून !’ पुकारते हैं । जिसको आवश्यकता होती है वह उन से दातून ले लेता है । कौसा उपकार का काम है ! पर कल मुझे एक बाबू को

वह अकेली जा रही है। मैं उन्हें परस से उसे इसी प्रकार अकेली आते देखता हूँ। वह चुपचाप जाती है। मुखमडल से आत्मिक शांति पटकती है। सुना है, यह नित्य योगाभ्यास करने जाती है।

अधिकांश नर नारी गोशाला के पास होकर शीघ्र ही नदी पर पहुँच जाते हैं। नदी पर कोई पक्का घाट नहीं। एक जगह माइ लोग छान करती हैं और उससे कुछ दूर हट कर पुष्प। पर हम उधर नहीं जाना चाहते, हम आगे जायेंगे, पारू की ओर भी नहीं मुड़ेंगे। सीधा पुल पर पहुँचेंगे। यहाँ उड़ा अच्छा दृश्य है। पुल के पास जगल है। यहीं उतर कर शौचादि से निवृत्त हो लीजिए। यहीं से वापस लौटना हागा। देर हो गई है। नहीं तो वह सामने शाहदरा में जहागीर की समाधि तरु चलते। चलो, लौटते हुए कुछ दूर तक दौड़ें। आध मील भी दौड़ लने से पर्याप्त व्यायाम हो जाता है। सारे दिन आलस्य नहीं आता। पुल से लेकर गाशाला तक की दौड़ काफी है।

अब आप को एक दूसरे प्रकार की सृष्टि नदी की ओर आती मिलेगी। यह देखिए, बुड्ढे बाबुआँ की एक टोली टहलती हुई आ रही है। सब के सब बूट, कोट, पतलून और धरमाधारी हैं। हाथों में बेंत की छडियाँ हैं। इनमें कई तो पेंशनर मात्रम हाते हैं, और बाक़ी कचहरी के मुलाजिम जान पड़ते हैं। इनका मार्तालाप सुनने का कई बार सयोग मिला

हिन्दी-गद्य वाटिका

सड़क की दहिनी पटरी पर देगिए, कौसा विचित्र दृश्य है। एक लम्बी-चौड़ी और काजी फलूटी भयङ्कर मूर्ति गधे पर सवार आ रही है। उसकी नाक में भद्दी सी लौंग है। एक हाथ में एक बहुत बड़ा हुक्का और दूसरे में एक मोटा और लम्बा डण्डा है। दोनों ओर टाँगें फैलाए बड़े रोब से पैठी है। इस यवानी की विकराल काया को देख कर भय और विस्मय दोनों होते हैं। कहीं तो पूल के नदश कुम्हला जाने वाली लखपुर की कोमलाङ्गी किशोरियाँ और कहा यह भीमकाय आसुरी मूर्ति ! ऐसे परस्पर-विरोधी नमूने इसी देश में सम्भव हैं।

चलो, अब जल्दी जल्दी घर पहुँचें। अभी हमें खान करना बाकी है।



ये मलाबार के सागर-तट के भयानक समुद्री लुटेर थे। ये बड़े धूर, नि शङ्क और अधोरफ़मा थे। इन के चित्र विचित्र दर्ता में लगभग सभी राष्ट्रा के ठग और क़ानून तोड़न वाले लोग थे। इन का छाटी छोटी शीघ्र गामिनी नावें तापा से सुसज्जित होती थीं। इनके केवट रक्त पिपासु और नि शङ्क लोग होते थे। ये पश्चिम और भारत के बीच व्यापार करन वाले गहुमूल्य माल से भर जहाजों की प्रतीक्षा में पड़े रहते थे। ज्या ही कोई जहाज इन की मार के भीतर पहुँचता ये छुट उसके तख़्ते पर चढ कर उम के कपड़ों का कप कर डालते। तत्पश्चात् ये उनके क्रीमनी माल का अपनी डोंगी में रख लेते थे।

कभी कभी काइ गलियान् व्यापारी जहाज इन लुटेरों का मार कर हटा भा दत्ता था और आघे के लग भग यात्रियों की प्राणहानि कराने के गद किसी न किसी प्रकार गदर में जा पहुँचता था। जहाज, आशा और उत्साह से भर हुए, बंदर से बाहर चल जाते थे और फिर समार को उनका पता भी नहीं लगता था। तब जिन साहसी व्यापारियों ने उन्हें माल देकर भेजा था व समुद्र पर खड़े हाथर हाथ मलते और समुद्री डाक़ुओं को गालियाँ देते हुए दात पीसत थे।

आप कहेंगे कि सभी प्रतिद्वन्द्वी व्यापारी कुछ समय के लिये अपने भेद भावों को भूल कर इन सब के साथ शत्रुओं को मिटा देने के लिये आपस में मिल क्या नहीं जात थे ?

हां चाहे झूठी, इन में उन मनोरंजक साहसी लोगों के रीति रियाजा पर उज्ज्वल प्रकाश पड़ता है। इस जिए, आइए, जरा आंग्रे-यंग के अद्भुत उत्सव की कथा पर ध्यान दें।

कहते हैं, सन् १६५८ में एक अरबी व्यापारी जहाज मरकत से चला। मौसम बहुत ही खराब था। वायु उसे हकेल कर भारत के पश्चिमी सागर तट पर ले आइ। अन्त में वह चील के समीप एक छोटी सी खाड़ी में किनार पर पहुँचा। इस लम्बी और कष्टदायक समुद्र यात्रा में मालिक और नौकर दोनों की तबियत पर बड़ा जोर पड़ा था। विज्वस के समय उनके सम्बन्ध आपस में अच्छे नहीं रह थे। जब उस प्रदेश के राजा ने सुना कि एक अनजान जहाज उसके राज्य में किनार पर आ लगा है, तो उसने सारी बातों का निरूपण करने के लिए अपने अफसर भेजे। मकलाहों को इन अफसरों के कान में अपनी दुःख वार्ता डालने का अवसर मिल गया। उन्होंने अपने कप्तान पर क्रूर और अमानुषी बतार का दोषारोपण किया। कप्तान ने भी अपना रोना सुनाया। उसने विस्तार के साथ बताया कि ये लोग मरी आत्मा का उल्लङ्घन और विद्राह करते थे। उसने अपने निर्येताओं से नियमन और सुव्यवस्था के सिद्धान्त को ऊँचा रखने के लिए अपील की। परन्तु दुभाग्य से वह अकेला था और उस पर दोषारोपण करने वाले अनेक थे। अफसरों ने अपनी समदर्शिता प्रकट करते हुए निश्चय किया कि बहुसंख्या की इच्छा ही प्रधान मानी

हिन्दी गद्य-शिल्पिका

यह अर आगे आया और उच्च स्वर में योजा—“जो गाड़ियाँ
 और अन्नगाव के छरुहे तुम त्राण हो उन्हें लेकर घेरा गंध
 लो।” ऐसा ही किया गया और इस जल्दी में अनाए हुए
 रक्षा न्यान से वे शत्रु पर गाली उरसाने लगे। घटनावली
 में यह परिवर्तन दस मुगलों का कुछ विगमय हुआ। परन्तु य
 नहीं चाहते थे कि उनका आर्यट अच अर निरल जाण। इस
 लिए उन्होंने उड़े जार से धाया योजा। अन्त को रात हो गई।
 साहसी आंग्रे न युद्ध की एक नई कल्पना तैयार की। उसने
 अपन माझियों का इकट्ठा किया और बीस दसी मनुष्यों को
 साथ ल, यह छिप कर मारत से बाहर घला गया। यह
 छोटा सा दल चुप चाप और हील होले शत्रु-सेना के पिछले भाग
 के पास जा पहुँचा। गोत्री की मार के अन्तर पर पहुँच कर,
 गगन-भेदी स्वर से चिल्लाते हुए, उन्होंने हल्ला बाल दिया।
 गाड़ियाँ की ओट से राक्री के मनुष्य भी गोली उरसाने लगे।
 इस साहस के कार्य में उन्हें पूरी सफलता हुई। मुगलों न
 समझा कि शत्रु की कुमुक आ गई है। इसलिये उन में पवरा
 हट से भगदड मच गई। उनकी हार में अगार कोई श्रुति रह
 गई थी तो उसे पूरा करने के लिये गढ की सेना ओट से बाहर
 निकल कर मुगला पर दूट पड़ी। शत्रु दत्त के केवल छत्तीस
 मनुष्य जीते अचे, शेष सत्र काट डाले गये। कहते हैं, आंग्रे ने
 स्वय अपन हाथ से घालीस आदमी मार।

सेना का कमान अफसर बनने का अधिकार इसी का था। परन्तु नजयुमरु राजा द्वितीय आंग्रे से कुछ बदगुमान रहता था। इस लिये प्रधान सेनापति किसी दूसरे अफसर को बनाया गया। आंग्रे का इस का अपना अपमान समझना स्वाभाविक था। उसने साचा कि यदि मैं एक पक्ष की सेना का कमाण्डर नहीं बन सकता, तो कोई कारण नहीं कि मैं दूसरे पक्ष का सेना नायक क्यों न बनूँ। इसलिए उसने अपनी सवार्ण सूरत का नवाब को पेश की। उसने इस सहायक सेनापति बना दिया।

आंग्रे ने नवाब का और भी अधिक कृपापात्र बनने के उद्देश्य से वीरता के उड़े बड़े अद्भुत कार्य किए। उसे अपने पहले स्वामी से थोड़ा उदला लेना पड़ी था। इस लिये जो भी बन्दी उसके हाथ पडा वह उसने तलवार के घाट उतार दिया। जिस अफसर ने उसका पद उठाना था वह भी पकडा जा कर नवाब के सामने लाया गया। इससे आंग्रे को बड़ी प्रसन्नता हुई। वह अधिक खटराग लिये बिना उसका सिर काट डालना चाहता था, परन्तु नवाब आगा पीछा करने लगा। बन्दी अपने बन्दी कत्ता के दयालु म्बभाज को ताड गया। उसने झट नवाब के सामने पाव पर गिर कर प्राणों की भिक्षा मागी। नवाब ने कहा—'डरो मत, तुम्हारी प्राण हानि नहीं की जायगी।' इस से आंग्रे को बड़ी निराशा हुई। वह, अपने हृदय

नवाब को यह विचार गृह्य अच्युत प्रतीत हुआ। वह अपनी सेना का एक बड़ा भाग लेकर चल पड़ा। उसने अपने जर्नल के उपदण पर इतनी पूरी तरह से आचरण किया कि उसने तुरन्त अपने भा एक लम्बे और तट्ट नाले में उन्द हुआ पाया। जब वह नाले से निकल कर मैदान में आने लगा तो अपने भाग का शत्रु से दृश्टा हुआ देख उसे बड़ी व्याकुलता हुई। जिस भाग से वह आया था उसी भाग से जाने का उसने यत्न किया, परन्तु आग्रे और उसके स्रुटे हुए सिपाही दूसरे सिरे को राके खण्ड थे। अभागा नवाब पिंजरे में चूहे की तरह फँस गया। काल की प्रान मूर्ति उसके सामने खड़ी अदृहास कर रही थी। उसने बड़ी शीरता से शत्रुदल को तोड कर बाहर निकल जाने का उयाग किया। परन्तु सकलता न हुई। उसकी सारी सेना नष्ट हो गई। उसके चुन हुए ६००० मनुष्य रण भूमि में खेत रहे।

बदला ले चुकने के बाद आग्रे फिर अपने पुराने म्यामी से मिला। उसने इसे त्रिपि पूरक अपना प्रधान मन्त्री बना लिया। इसके दोड़ी देर बाद बड़ी धूम वाम से उसका विवाह राजा की बहन के साथ हो गया। परन्तु इस पद और प्रतिष्ठा का आनन्द चिरकाल तक लेना उसके भाग्य में न था। सन् १६८६ में वह मुगलों के साथ बड़ी शीरता से युद्ध कर रहा था कि एक गोली उसके हृदय को पार कर गई। वह वहीं देर हो गया।

पर सम्मान और प्रतिष्ठा की सृष्टि करदी गई।

इस बीच में आंग्रे साहब रहा था कि मैं अपने टापू में क्या काम लूँ। मरुता उस के मन में एक मनाहर विचार उत्पन्न हुआ। यावपीय व्यापारी परिचर्मा नागरों से जो अमित धन राजि लाते थे उसे दूर इसे उड़ा आश्चर्य हुआ था। यह साचता था कि इस उन का कुछ भाग भर सृजान में क्या न जाय? उसने अपने य विचार राजा पर प्रकट किए। यह भी कुछ कम उल्लासी न था। उसने उसे अपना, जहाज और सिपाही लिए। आंग्रे ने मजबूती के साथ अपने सागर परिविष्टा दुग की रिता-बन्दी करना शुरू कर दिया। अब वह अपने जहाज में बैठ कर समुद्र में जाता और जो भी व्यापारी जहाज रास्ते में मिलना उसे लूट लेता। थोड़े ही समय में वह व्यापारियां र लिय एक हीआ उन गया।

परन्तु तमगा समुद्री डाकू अपने चट्टान में घिर हुए छाट से टापू पर सन्तुष्ट न था—उसके मन में बहुत अधिक महत्कांक्षाएँ थीं। उसने एक २०,००० मनुष्या की सेना एकत्र की और नए मैदान मारने के लिए जहाज में बैठ कर सागर तट के साथ साथ गया। भारत के मान चित्र पर यदि आप दृष्टि डालेंगे तो आप जो बम्बई और गोआ के बीच प्रायः मार्ग पर गेदिया नाम का एक स्थान लिखा मिलेगा। पुतगीजों ने यहा कई मजबूत किले बनाए थे। आंग्रे इस परिणाम पर पहुँचा

गन्दर उन गण, और आग्ने सचमुच एक बड़े भूभाग का शासक हो गया। एक जहाज उड़िया जाति के अरबी घाड़ लिए आ रहा था। संयोग से वह आग्ने के हाथ पड़ गया। हम से उसके मन में एक नया विचार उत्पन्न हुआ। उसकी सेना पहले ही उड़ा भयानक थी। अब घुड़-सवार मिल जाने से उस में और भी वृद्धि हो गई। उस नाना भाँति की सेना में अनेक राष्ट्रीय लोग मिले हुए थे। हिन्दू, मूर, डचमैन, पोर्चू-गीज और फ्रेंचमैन, वरन् अंगरजा ने भी सागर दूर्यु की रत्न-रजित ध्वजा के सामने राज भक्ति की शपथ ली थी। वे सब साहसी, निश्चिन्त, विरुद्ध योद्धा, विवेक शून्य और दुरात्मा थे, जिन को उन के दश वासियों ने उन के उच्छृङ्खल आचरण के कारण समाज से अहिष्कृत कर रखा था।

बड़े बड़े महाराजों के यहाँ जैसा ठाट गट और शिष्टाचार होता है, वह सब काहनूजी ने उस सागर परिवेष्टित दुर्ग में स्थापित कर दिया। अड़ोस पड़ोस के राजवाडों और प्रान्तों के राजदूत पाद-चन्दन व लिये उस के पास आने लगे। उसके सिंहासन के गिर्द समुज्ज्वल वस्त्रधारी लोगों की भीड़ लगी रहती थी। क्रीमती पोशाकों वाले जरनैल, सागर-सेनापति और दूसरे उच्चपदाधिकारी सदा उसकी सेवा में उपस्थित रहते थे। ये कोई छैल-वाँके दरबारी नहीं थे—वरन् भीषण डाकू थे, जिन की जडाऊ तलवारें और चमकती हुई कटारें

३५

उन्नत देश के देहाती कैसे रहते हैं

लेखक—श्रीयुत महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी० ए०

[आप का जन्म इलाहाबाद जिले की तहसील हडिया के बिसौली ग्राम में १८ अक्टोबर सन १८८७ को हुआ था। आप हिन्दी के पुगने प्रसिद्ध लेखक हैं। हिन्दी की बड़ी बड़ी पत्रिकाओं में आपकी अनेक लेख मालाएँ निकल चुकी हैं। आप अधिकतर ज्योतिष पर लिखते हैं। वही आपका प्रिय विषय है। आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ दो हैं। एक का नाम है विज्ञान प्रवेगिका, दूसरा भाग और दूसरी का सूर्य भिद्धान्त का विज्ञान भाग्य। पिछली पुस्तक क ५ खण्ड ११००० पृष्ठों में छप चुके हैं। छटा खण्ड तथा मूमिका अभी जारी है। आप इस समय गवर्नमेंट हाई स्कूल यालिया, में प्रधान अध्यापक हैं।]

इच्छा होती है कि दश में और मसाल में क्या हो रहा है, जितनी कि पढे लिखे नगर-वासियों की होती है। यहाँ की भाषा में जब पहल पहल विज्ञान की प्रारम्भिक पुस्तकें सम्नी सरनी लीं तब नगर निवासियों में अधिक देहातियों ने ही इन का खरीदा। पात्रामेंट में ख्यात चाहने वाले सदस्यों में देहात में ही भक्ति भक्ति के रहस्य के प्रश्न पूछे जाते हैं और यहाँ के रहने वाले इनके कामों को बड़ी भावधानी में देखते रहते हैं और किसी अनुचित काम पर आलाचना करते हैं।

डेनमार्क के गाँवों में ऐसा ऋई घर नहीं है, जहाँ समाचार-पत्र और पुस्तकें न मिलती हों और ऐसा ऋई किमान नहीं है जो इंग्लैंड और उपनिवेशों के सम्बन्ध में ब्रिटिश मजदूरों से अधिक जानकारी न रखता हो। गायर-युद्ध के समय में डेनमार्क में था। उस समय मुझ से मालूम नहीं कितनी बार यह पूछा गया, कि इस युद्ध का क्या कारण है। एक बूढ़ी स्त्री के मुँह से यह सुनकर मुझ उड़ा आश्चर्य हुआ कि यदि आलिखर कामबेल जीवित होते तो यह युद्ध न छिड़न पाता। विज्ञान और राजनीति में ही यहाँ के किसान प्रेम नहीं दिखते बरन् इतिहास, साहित्य और अनुश्रुति में भी नगर निवासियों से अधिक रुचि दिखते हैं। इन देहातियों की इस जिज्ञासा-

* 'आलिखर कामबेल'—इंग्लिस्तान के एक प्रसिद्ध जनरल जिन्होंने यहाँ के राजा प्रथम चार्ल्स को गद्दी से हटाया था।

और जो इनका उडा हाता है कि गांव के सभी अयस्या क पुरुष स्त्री इसम सुखपूर्वक बैठ सकते हैं। सभा भवन के एक किनार एक घड़तरा हाता है, और दूसरे किनारे वाचनालय और पुस्तकालय। उही रुही वाचनालय और पुस्तकालय के लिए अलग कमरे रहने हैं। डेनमाक के देहाती इस बात का उडा ध्यान रखते हैं, कि सब के पढने लायक समाचार पत्र ही नही बरन् साप्ताहिक और समालोचन पत्र और पत्रिकाएँ तथा पुस्तक भी मिल सकें। यह जान भी नहीं है कि ये लोग पुस्तकालय की पुस्तकों पर ही भरोसा रखें। वे अपने पास से भी पुस्तकें मंगा मंगा कर पढते हैं और यदि निबंन हुए तो कइ मिलकर किसी पुस्तक या समाचार-पत्र का मंगाते है और गरी बारी से पढते हैं।

जिस गांव का प्रबन्ध उत्तम हुआ वहा के मिलान मन्दिर में पढने लिखने और गणशाप क सिवा कोई न कोई ऐसा काम भी होता है जिसमें सार गांव के निवासी सम्मिलित होते हैं। जाडे के महीने में, सप्ताह मे कम से कम एक दिन, सन्ध्या के समय, गांव भर के युवक शारीरिक उन्नति के लिए इकट्ठे होते हैं। यहाँ एक अथैतनिक पहलवान सत्र जो तरह तरह की कसरत सिखाता है। सप्ताह में एक दिन बालक, युवा, वृद्ध, नर, नारी व्याख्यान सुनने के लिए आते हैं। महीने में दो

यह होता है कि नवीन अनुभव की बातें किसानों को बतलाना रहे और अपने कर्मचारियों को देहातों में इसलिए भेजता रहे कि जो बात लोगों की समझ में न आये उसे वे अच्छी तरह समझा दें।

इन मिलन मन्दिरों, कृषि सुधारणी समितियों तथा व्याख्याना में ही डेनमार्क के गावा में जैसी आदर्श उन्नति होनी चाहिए, होती है, परन्तु वहाँ के निवासी इतने से ही सन्तुष्ट नहीं रहते। किसान लोग हाई स्कूल और कृषि विद्यालय से भी काम लेते हैं। डेनमार्क की कुल जन-संख्या तीस लाख है, जिसके लिए ७५ हाई स्कूल हैं। उनमें किसान ही नहीं, वरन् किसानों की सहायता करने वाले मजदूर भी जाड़े के दिनों में जब कुछ काम काज नहीं रहता इतिहास, साहित्य, अर्थशास्त्र राजनीति, स्वास्थ्य विज्ञान और अन्य उपयोगी बातें सीखते हैं। प्रतिवर्ष दस सहस्र शिक्षार्थी जिनमें एक तिहाई मजदूर होते हैं, फुरसत के महीनों में हाई स्कूलों में जाते हैं। ये जब पढ़कर अपने अपने गांवों को लौटते हैं, तब जा कुछ नई नई बातें सीखते हैं उनको व्याख्यानों और वाग्बद्धिनी सभाओं-द्वारा गाँव वालों को सिखाते हैं। इन वाद विवादों से डेनमार्क के किसानों को बड़ा लाभ होता है। इनसे उनकी बुद्धि तीव्र ही नहीं होती, वरन् उनका ऐसी बातों से भी प्रेम हो जाता है जिनका उनसे विशेष सम्बन्ध नहीं है। यह याद रखना

हिन्दी गद्य-वाटिका

गिरजाघरों में बड़े ही मनोहर धर्मोपदेश देते, धुरन्धर राजनीति विशारद गाँव के मैदानों में दिल को फड़का देने वाले व्याख्यान सुनाते, पुराने खतिहानों में नामी नामी गायक और बजैया सङ्गीत, नाटक और देश भक्तिकी कविताओं द्वारा लोगों के चित्त को लुभाते और अपने पूजकों के वीर कर्मों की प्रशंसा द्वारा दिखलाते कि मनुष्य क्या कर सकता है और हम, लोगों को आगे क्या करना चाहिए। सप्ताह में कम से कम एक दिन प्रत्येक गाँव में इस तरह का जमाव हुआ करता था। इसमें लोगों के मन बहलाने का ही ध्यान नहीं रखा जाता था, कुछ ऐसी चर्चा भी होती थी जिसमें किसान स्वयं कुछ सोचें और विचारें, एक पथ का काज ही, उनका मन भी बहलें और शिक्षा भी मिले। परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही दिनों में किसान भाइयों को पढ़ने लिखने की चाट पड़ गई, जिससे पुस्तकों की माँग खूब ही बढ़ी और व्याख्याताओं से तरह तरह के प्रश्न करने का हिसाब पढ़ने लगा, देश तथा सप्ताह की बात जानने के लिए मिलान मन्दिर की आवश्यकता जान पड़ने लगी, जिसे अपने खर्च से बनवा कर अथवा किराये पर लेकर वाचनालय तथा पुस्तकालय का प्रबन्ध किया जाने लगा, किसानों में जागृति होने लगी। मण्डली का उद्देश्य पूरा हो गया। अब केवल इस बात की कमी थी कि कुछ समय तक यह काम ऐसे ही हाता-रही-उ-अन्त में, डेनमार के देहाती

३६

कृष्ण-चरित

लेखक—प्रोफेसर शिवाधार पाण्डेय

[आपका जन्म ९ फरवरी सन् १८८८ को बुलन्दशहर में हुआ था। इनका निवास स्थान पुराना फील्डखाना बाजार कानपुर है। आपने एल० एल० बी० पाम करने के बाद कोहू तीन वर्ष तक चकाहत का। आनकल आप इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में अँगरेजी के रीडर हैं। अँगरेजी पर तो आपका अधिकार है ही, पर आप हिन्दी के भी अच्छे समझ हैं। आप कविता भी करते हैं।]

घनघोर घटा से घिरी हुई है, चारों
घोर भयायना जङ्गल है, सिंह है,

लिया है। देश की सत्ता का नाश होने से भविष्य भयावहने रूप में हो गया है।

पेसी दशा में, ठीक अर्द्ध रात्रि के समय, उस जाज्वल्यमान ज्योति का आविर्भाव हुआ जो सर्वकाल से स्थिर है और सबकाल तक स्थिर रहेगी। उसी ज्योति की जगमगाहट के एक कण मात्र प्रकाश का आज, यहाँ पर, थोड़ा बहुत दर्शन करना है।

हमारे पास इतना समय नहीं है कि हम उन छुट्टे लोगों की बातों पर यहाँ ध्यान दें, जो इस दिव्य जीवन को जानने और समझने के ग्यान में, उसकी ध्येय की सुराइयाँ का पाप अपनी मूर्खता दिखाते हुए, अपने माथे पर मढ़ते हैं। कृष्ण का जीवन जितना ही उच्च है, उतना ही कुछ लोग उसे नीच करने का प्रयत्न करते हैं। एक की राय में कृष्ण गुजरात का एक चतुर राजा था जिसने अन्त में एक बहेलिये ने मार डाला, परन्तु महाराज गायकवाड में और श्रीकृष्ण में अनन्त अन्तर है। दूसरों की राय में कृष्ण एक धार्मिक नेता थे, जिन्होंने हत्या का उचित बतलाया और भारत में आत्मस्य का आधिक्य किया। कहना नहीं होगा कि भगवान् कृष्ण की दिव्य शिक्षा से ये लोग मुँह मोड़कर आँख-कान मूँदे हुए हैं। तीसरे लोगों की घृणित राय में कृष्ण एक मनमौजी गोप युग्म थे, जिन पर उन्होंने ने सत्तार भर के दोषा

परीक्षित की जय गर्भ में भगवान् ने रक्षा की थी, तब किस प्रभाव से ?

उन्होंने कहा—“यदि मैं हँसी में भी रुभी झूठ नहीं हा है, यदि मैं युद्ध में कभी पीछे पैर नहीं दिया है, यदि तब उस और कशी को धर्मपूर्वक मारा है, यदि मैं अपने मेम अर्जुन का कभी स्वप्न में भी विरोध नहीं किया ; यदि धर्म और ब्राह्मणगण मुझको सर्वदा प्यारे रहे हों, तो यह बालक जीवन को प्राप्त हो ।

यथा सत्यञ्च धर्मश्च मयि नित्य प्रतिष्ठितौ ।

तथा मृत शिशुरप्य जीवतामभिमन्युज ॥

‘यदि मुझ में सत्य की बराबर प्रतिष्ठा है धर्म की बराबर प्रतिष्ठा है, तो यह मृत बालक, अभिमन्यु का पुत्र, जीवन को प्राप्त हो ।’

तप और तेज की शक्ति से क्या नहीं हो सकता ? तामसिक दिग्गस में चाहे जितना अन्वकार प्रतीत हो, परन्तु उस अनुपम आत्म-ज्योति ही में प्रकृति में प्रकाश होता है । श्रीकृष्ण के इस कर्म के समान हमारे महर्षियों के अनेक उदाहरण वर्तमान हैं । इससे उममें कुछ आश्चर्य नहीं । परन्तु, जैसे देखिए तो भगवान् कृष्ण का सम्पूर्ण जीवन ही आश्चर्यमय है । भाग्यत् धर्म के प्रसाह से भारतवर्ष में जो भक्ति की अपूर्व धारा गही है, उस में जिस भक्त को देखिए वही उनसे उस चरित्र को

यह उसका दोष है या सुवर्ण का ? यदि शैतान को भी इज्जिल पढाई जाय, और वह उससे भी अपना ही मनलग निकाले, तो यह शैतान का दोष है या इज्जिल का ? कहा है, 'पय पान भुजङ्गाना केवल विपरधनम्' अर्थात् भुजङ्ग का दूध पिलाने से उसके विप ही की बढ़ती होनी है । ऐसे ऐसे ही भयानक भुजङ्ग भक्तों ने भारतवर्ष में अपना विप फैलाया है । यदि ऐसा न होता, तो धर्म के नाम से इतने अधर्मों पाप क्यों फैलाते फिरते ?

कृष्ण का चरित्र ! सत्कार में उससे बड़ कर दूसरा चरित्र मिलना उठिन है । परन्तु कलङ्क किसको नहीं छूता ? कलङ्क कृष्ण को भी लगा था । सत्राजित की सूर्यमणि के बारे में उनके सारे कुटुम्बियों ने उन पर सन्देह किया था, यहाँ तक कि उनके दूसरे शरीर दूसरे हृदय, उड़े भाई बलराम भी उन से रूठ कर झारिका छाड बैठे थे । परन्तु असत्य असत्य ही है, सत्य सत्य ही है । तब, कलङ्क का नाम सुनते ही किसी को पक्काएक घबडा न उठना चाहिए परन्तु उसकी पूरी जांच करनी चाहिए, जैसी कृष्ण ने प्रसेन की मृत्यु की की थी ।

सांसारिक भाव देखो । कृष्ण क्या नहीं थे ? पहले द्रुप के राजनीतिज्ञ—'न कूटनीतिरभवत् श्रीकृष्णसदृश्य पुरा'—शुक्राचार्य जी कह गए हैं कि 'श्रीकृष्ण के समान नीति में चतुर कोई नहीं हुआ ।' महावीरों के सहवीर भीष्म पितामह ने राजसूय यज्ञ में एकत्र हुए राजाओं से कहा था कि मैं तुम में से एक

के राजा लोग इन्द्रप्रस्थ में एकत्र हुए थे, गगवान् कृष्ण पैर धोने के लिए नियुक्त किए जान में नहीं शरमाये—नहीं, नहीं, अपने आपको ही उन्हाने नियुक्त किया। अर्घ्य के अवसर पर कुरु वृद्ध भीष्म पितामह ने उनका वर्णन यां किया—

‘ब्राह्मणा मे ज्ञान मे उडाई होती है। क्षत्रिया में बल से। गार्ह्य की पूजा के दानों कारण उपस्थित हैं।’

वेद वेदाङ्गविज्ञान बलश्चाप्यधिक तथा।

नृणां लोके हि कोऽन्याऽस्त विशिष्ट केशगदते ॥

‘वेदवेदाङ्ग और विज्ञान में अधिक होने से और बल में भी अधिक हान में मनुष्यों के लोक में, कशक को छाड़कर दूसरा ऐसा कौन है जो विशिष्ट कहा जाय?’

‘दान दाक्षिण्य, श्रुति, वीर्य, लज्जा, कीर्ति, बुद्धि, सन्तति, श्री, घृति तुष्टि पुष्टि, सब अच्युत ही में स्थित हैं।’

कृष्ण कमलपत्राक्ष नाचयिष्यन्ति ये नरा।

जीवनमृतास्तु ते ज्ञेया न सम्भाव्य वदाचम् ॥

‘कमल-दल के से नेत्रवाले कृष्ण की जो पुरुष पूजा न करेंगे उन्हें जीवन्मृत जानना चाहिए और उनसे बात न करनी चाहिए।’

। केवल यही नहीं, व मङ्गीत-विद्या में निपुण थे—मुखी मनोहर उनका नाम है। वे रास में कुशल थे—उनका नटवर वेप मशहूर है। वे कर्मिता में अद्वितीय थे, उनके दिव्य गीत भगवद्गीता की तरङ्ग अनन्त समय तक उठेंगी। पौरुष का

सेनापै क्षत्रियत्व की सच्ची शिक्षा को, सच्चे धर्म को, कभी की तिलाञ्जलि दे चुकी थीं। देग रमातल को जा रहा था। श्रीकृष्ण ने पहले अनार्यों पर आक्रमण किया। उत्तर में नरक और दक्षिण में याण—यही दोनों उन लोगों में उस समय विशेष बलशाली थे। कृष्ण ने उत्तर जाकर नरक का उसके देश प्राग्जो-निप (भूटान) में ग्रह किया। फिर दक्षिण में उन्होंने याण को हराकर उसकी कन्या उपा का विवाह अपने पोते अनिरुद्ध के साथ होने दिया। उसके पुत्र प्रद्युम्न का विवाह मायावती से हुआ था, जो अनार्य असुर शम्बर ही के अधिकृत देश में प्रकट हुई थी। शम्बर का नाश प्रद्युम्न ने स्वयं किया था और यह शम्बर छल के लिये अकेला ही था। शम्बरी माया अब तक प्रसिद्ध है।

परन्तु क्रूर अनार्य लोगों का बल इस समय बहुत क्षीण अवस्था में था, असली डर तो देश को अनार्य प्रकृति वाले आय राजाओं ही से था। नरक ने हजारों कन्याएँ अपने किले में कैद कर रखी थीं। (कृष्ण के सोलह हजार कन्याओं के साथ विवाह करने की कथा महाभारत में नहीं मिलती) परन्तु जरासन्ध ने, जो मगध का चन्द्रवशी राजा था, छियासी राजाओं को (भागवत में यह 'अयुते द्वे शतान्यथौ' कहे गये हैं) जीतकर पहाड़ की गुफा में कैद कर रक्खा था, कि अगर वह सौ राजाओं को जमा कर ले, तो उन सब का बलिदान शिवजी को कर देगा। साथ ही साथ जरासन्ध ब्राह्मणों का

में श्रीकृष्ण को यदि भारतवर्ष का उद्धार करना था, तो बहुत शीघ्र । उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिर को राजमूय यह करने का उपदेश कर भीम के द्वारा जरासन्ध का कौशल से नाश करवाया, और मिथुपाल के सौ अपराध क्षमा करने पर भी अपनी प्रकृति प्रेरणा से यह खय उनकी तेजोऽग्नि में पतङ्ग की भाँति कूद पडा ।

इसके पीछे जब श्रीकृष्ण ने देखा कि कौरव लोग भी उसी प्रकार सुधरने वाले नहीं हैं, अथवा दर्जे के अधर्मी और दुराचारी हैं, जिनके प्रचण्ड पाप पूरा प्रताप के आगे भीम और द्रोण जैसे बड़े बड़े विश्वविजयी सरदारों को, विदुर और सञ्जय जैसे बड़े बड़े राजनीति विशारद, राजवल्लभ महामन्त्रियों को चुप चाप सिर झुकाए भरी सभा में शकुनि के कपट छूत और द्रौपदी के चीर-हरण सदृश दारुण दृश्यों को विमिश्र होकर देखना पडा था, तो उन्होंने महाभारत को भी रोकना पसन्द नहीं किया, और उस अधाह सग्रम रूपी सागर में भारत भर का क्षत्रियत्व गोता खा गया । श्रीकृष्ण ने देश के कल्याण के लिए सारा पक्षपात छाड कर जिस प्रकार पाण्डवों से कौरवों का वध कराया था, उसी प्रकार अपने उदण्ड कुटुम्ब का नाश कराया । धर्मराज युधिष्ठिर के राज्य-मार्ग में देश हितकी कोई बाधा न खड़ी होने दी । यदि पृथ्वी पर कर्म-काल की आना था, तो श्रीकृष्ण ने पुरानी सारी बुराइयों को दूर कर, दूषित रुधिर का रुधिर की धारा द्वारा बहा कर, मनुष्यों को फिर

तौर पर दे गये थे, यदि उन में उमने नाम उठाने की बुद्धि होती।

सच तो यह है कि जिस प्रकार परशुराम से पाशुपत हथियार के बाद मयादा पुण्योत्तम रामचन्द्र का चरित्र देगा कर भारतवर्ष ने फिर से नया धारण कर लिया था, उसी प्रकार महाभारत के बाद भगवान् श्रीकृष्ण के आदर्श ने उस नए धारण की बुद्धि नहीं की। यह कलिकात् के प्रभाव और मनुष्यों की दुर्बलता का परिणाम है, श्रीकृष्ण पर इसका दाप लगाना पड़ा है। उन्होंने एक सिरे से एक नए धारण कर दिया। धर्मराज्य स्थापित कर, धर्म का उपदेश कर कर धर्म का मार्ग प्रतला दिया। यदि भारतवर्ष ने श्रीकृष्ण के उम सरलानेसगल धर्म मार्ग तथा धर्म-मार्ग से नाम नहीं उठाया, तो देश का दोष है, श्रीकृष्ण का नहीं।

श्रीकृष्ण ने धर्म का क्या मार्ग प्रतलाया— हम प्रश्न का उत्तर देना श्रीकृष्ण के जीवन के सच्चे तात्पर्य का जान लेना है। उपनिषद् में जिन का 'कृष्ण देवकीपुत्र' कहा है, यह यही थे जिन्होंने एक क्षेत्र कलिकात् में गोता खाते हुए, आलस्य और विलासिता में डूबते हुए, मनुष्यों की आत्मा को फिर से नया कर देना चाहा। उनका उपदेश ऐसा था कि वह मुर्दे से भी मुर्दे मनुष्य को एक नए जीता जागता बना कर ही छोड़े। यह उपदेश 'भगवद्गीता' अर्थात् भगवान् का गीत है।

चाहिण, आत्मा कभी नहीं मरती अथवा नाश होती—किर साच काहे का ? दु ख और फलेश उसको जरा भी नहीं व्याप्त होते । मनुष्य की आत्मा या नाश नहीं होता, उसका जीवन अनन्त है । प्रत्यक्ष में, मनुष्य ससार में मर जाता है, परन्तु असल में बराबर जीता रहता है । मनुष्य को चाहिण कि वह इसी असतत अवस्था में हमेशा रहे । इस ससार के जीवन को ही अपना असली जीवन न मान बैठे । परन यह है कि उस सच्चे असली जीवन को मनुष्य किस प्रकार प्राप्त कर सकता है (क्यारि वही मोक्ष, कल्याण और निर्वाण है) । देखना चाहिये कि वह सच्चा जीवन इस ससार का झूठा जीवन कैसे हो जाता है ।

श्रीकृष्ण कहते हैं—माया के कारण । माया कैसे पैदा होती है ? कर्मों से । मनुष्य कम करता है, उसका फल होता है, उन फलों को वह भोगता है, दु ख सुख जो कुछ हो, उसे भोगना होता है । वह अपना समय इस झूठे स्वर्ग नरक ससार में बिताता फिरता है । इसी से इस माया का, इस झूठे ससार का, और इस झूठे जीवन का अन्त नहीं हाता । यदि माया छूट जाय, तो इससे भी छुटकारा मिल जाय और मोक्ष हो जाय ।

माया कैसे छूट सकती है ? श्रीकृष्ण ने कहा है कि कर्मों से । कर्मों ही से वह पैदा होती है, और कर्मों ही से वह नाश भी होती है । पर कैसे कर्मों से ?—निष्काम कर्मों से । यही

सरल रास्ता है, यही भगवान् की शिक्षा है । कलिकाल में सीधा रास्ता उतनाये जाने की ज़रूरत थी इसीलिए भगवान् का अग्रतार हुआ था और उन्होंने रास्ता उतला दिया ।

माया नाश करने के और भी रास्ते हैं । भक्ति, ज्ञान और कर्म ये तीनों मार्ग श्रीकृष्ण ने दिखलाये हैं, तीनों धी-प्रशमा की हैं, और तीनों का आपस में सम्बन्ध उतलाया है । किस सीढ़ी से मनुष्य कितनी दूर पहुँचता है और किस मार्ग से उसको कम कठिनाई होती है, यह भगवान् के उपदेश से प्रकट होता है । परन्तु सब से सरल मार्ग या सीढ़ी निष्काम कर्म ही की है, यह श्रीकृष्ण का सबसे बड़ा सन्देश है ।

निष्काम कर्म के विषय में श्रीकृष्ण का यह भी उपदेश है—यदि मनुष्य में प्रिया है, तो वह सत्कार से—सब भूतों से—प्रेम करेगा, यदि उसको सब जीवों से प्रेम होगा, तो उसको प्रकृति से प्रेम होगा; यदि प्रकृति से प्रेम होगा तो प्रकृति की आत्मा से भी होगा; यदि प्रकृति की आत्मा से प्रेम होगा तो वह परमात्मा पर भरोसा रखेगा । यदि परमात्मा पर भरोसा रखेगा, तो उसके कर्म भी निष्काम होंगे । निष्काम कर्मों से माया का नाश होगा, भव सागर से मोक्ष होगा, सच्चा जीवन प्राप्त होगा ।

गीता में ऐसे ऐसे भाग हैं, जो सार सत्कार को एक करते हैं । मनुष्य मात्र भगवान् के सामने बराबर है—यही शिक्षा इन श्लोकों की शब्द व्युत्पत्ति द्वारा दी गई है ।

गीता से उदर हित-कर उपदेश हमको रही मिलता है ।

यदि ससार न भगवद्गीता से पहले पूरा काम नहीं उठाया, तो अर उठान का तैयार हा रहा है । धीरे धीरे पूरे पश्चिम, योरप अमरिका चार्ग आर इस अमून्य रत्न का प्रकाश फैल रहा है, और मनुष्य मात्र अपन सशे जीवन का जान रहा है ।

हम हिन्दू लाग मानते है और स्वय श्रीकृष्ण ने कहा है—

‘यदा यदा हि धर्मस्य ग्गानिभवति भारत ।

अभ्युत्थानम प्रमरय तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥’

‘जय जय धर्म का क्षय और अधर्म का अभ्युत्थ होना है, तब तब हे अर्जुन ! मैं अपने का सृजता हूँ । यह भगवान का उचन है । जहाँ मयादा पुरुषात्तम के दो अक्षर के ‘राम’ नाम ही का हम परमशर का नाम मानते हैं, वही कृष्ण को हम कोई विशेष नाम नर भी नहीं पुकारन । केवल ‘भगवान्’ ही रहते हैं । उनक लिंग वही नाम यथार्थ है । भगवान् ही से सब कुछ है ।

यत सत्य यतो धर्मो यथा ह्याराज्य यत ।

ततो भवति गोपिदा यत कृष्णन्ततो जय ॥

“जहाँ सत्य है, धर्म है, लज्जा है, मीधापन है, वही ही भगवान् पाये जाते हैं । जहाँ भगवान् हैं वही ही जय होती है ।”

भगवान् कृष्ण ने जय का—ससार जय का—सीधा, सरल रास्ता बतलाया है । फिर क्या न कहें ?—

अधिक प्यार करने व कि उन्होंने रामेश्वर “मम प्राणी प्रियतर” — ‘हमार प्राणी से भी प्यारे’—रह कर भरत का उल्लेख किया है। कौशल्या से रामचन्द्र ने कहा था—“धर्म प्राण भरत की बात देख कर तुम्हें अया-या छोड़ने में हम कुछ भी चिन्ता नहीं हानती।” पर इन रामचन्द्र ने भी भरत पर सन्देह कदा पक बाण न छाड़ हा, ऐसा नहीं है। उन्होंने सीता से कहा था—“तुम भरत के सामने हमारी प्रशंसा मत करना, क्योंकि ऋद्धियुक्त पुरुष दूसरे की प्रशंसा नहीं सुनना चाहता।” यह सन्देह क्षमा नहीं किया जा सकता। पिता दशरथ न भी रामचन्द्र के राज्याभिषेक के समय भरत को सन्देह की दृष्टि न देखा था। उन्होंने राम को बुला कर कहा था—“हम चाहते हैं कि मामा के यहाँ भरत के रहते रहते ही तुम्हारा अभिषेक हो जाय, क्योंकि यद्यपि भरत धार्मिक और तुम्हारे पीछे पीछे चलने वाला है, तथापि मनुष्य का मन विचलित होते किन्ती देर लगती है।” इक्ष्वाकु-वंश की परम्परागत प्रथा के अनुसार राजसिंहासन उडे भाई ही का मिराता है, तो फिर पत्नी दशा में धार्मिकाग्रगण्य भरत पर ऐसा सन्देह करना मार्जनीय नहीं हो सकता। रामचन्द्र भरत के चरित्र की महिमा इतनी जानते थे तो भी यनयास के अन्त में भरद्वाज के आश्रम में उन्हाने हनुमान को यह रह कर भरत के पास भेजा कि ‘हमारे आने की खबर सुन कर भरत के मुख पर कुछ विकार होता है या नहीं, यह अच्छी तरह

हुई। दैव के चक्र में पड़ कर दशताम्रा के समान चरित्र सम्पन्न भरत सार ससार के सन्देह-भजन हो लाञ्छित हुए। जब वे रामचन्द्र को मनाने के लिये बहुत सी सेना तैयार जा रहे थे, तब निपादां का राजा गुह्य मन में यह विचार कर कि वे रामचन्द्र का अनिष्ट करने के लिए जाते हैं, हाथ में लठ्ठ लेकर रामन्ते में खड़ा हो गया। यही कथा भरद्वाज ऋषि तक ने भय की दृष्टि से देखते हुए उन में यह पृडा—‘आप उस निष्पाप राजपुत्र के पास कोई पाप विचार कर ता नहीं जाते हैं?’ इस प्रकार हर एफ का समाधान करते करते भरत के प्राण कण्ठगत हो गये। भरत कैकेयी को ‘मातृरूपे महामित्रे’ कह कर सम्वाधन करते थे। वारत्त में कैकेयी माता के रूप में उनकी पड़ी भारी शत्रु ही थी। सारे ससार का भरत पर जो सन्देह की दृष्टि का विष-वाण गिरता था, उसका मूल कारण कैकेयी ही थी।

किन्तु घटनायली रितना ही जटिल भाव क्या न कारण करे, पर भरत के अपूर्ण भ्रातृ स्नेह ने सारी जटिलता को सहज कर दिया था। रामचन्द्र को हमने अनेक अवस्थाओं में सुखी होते देखा है। जिस समय त्रिशकूट की पुष्प वाटिका की शोभा और टूटे फूटे पत्थरों के टुकड़ों में छाई हुई अधित्यका भूमि में अधिष्ठित पर्वत के शिखर और रंग विरगे फूलों को देख कर रामचन्द्र ने सीता से कहा—“इस स्थान पर तुम्हारे

‘हि महाबाहा, आप जिनकी कुशल पूछत हँ, वे सकुशल हँ।’
किन्तु पिछली रात सो बुरा खपन थीर दूता की व्यग्रता ये
दोनों उन्हें एक समझपा के समान समझ पड़े। इन दो घटनाओं
सो दुश्चिन्ता क मृत्र में बाँध कर वे अत्यन्त दुःखी हुए।

पहुत मे ख्यान, नदी नाले और झाड़ियाँ पार करके भरत
दूर ही से अयोध्या की चिरश्यामल वृक्षावली को देख सकते
थे और डरी हुई जमान से उन्हां ने मारथी से पूछा—“अयोध्या
सी तो नहीं मालूम होती। इस नगरी का यह चिरश्रुत तुमुल
शब्द क्यों नहीं सुनाइ पडता ? घेदपाठी ब्राह्मणों का कण्ठस्वर
और काम में लगे हुए स्त्री पुरुषों का कोलाहल भी बिलकुल
नहीं सुनाई दता। जिन प्रमोद-उद्यानों मे स्त्री पुरुष अकेले
विचरते थे, वे आज मूने पड़े हैं। सडकें चन्दन और जल के
छिडकाव से परित्र नहीं होतीं। सडकाँ पर रख, हाथी, घोड़े
कुछ भी नहीं हैं। जिसने सब दरवाजे खुले हैं, ऐसी श्री-हीन
राजपुरी मानों व्यग्य कर रही हैं। यह तो अयोध्या नहीं है,
मानो अयोध्या का वन है।”

वारतव में अयोध्या श्री-हीन हो गई थी। रामचन्द्र रूपी
चन्द्र के बिना अयोध्या के सुन्दर बाजारों की शोभा बिलकुल
नष्ट हो गई थी। तीनों लोकों मे यशस्वी महाराज दशरथ ने
पुत्र शोक मे अपने प्राण त्याग दिए थे। अभिषेक के उत्सव
से आनन्दित रहे राजकुमार मुनियों के घेप मे वन को चले

“या गति सर्वभूताना ता गतिं त पिता गत ।”

‘सब प्राणियों की जी गति होती है, वही गति तुम्हारे पिता की हुई है।’ इस समाचार को सुन कर कुठार से काटे गए उन वृक्ष की तरह भरत पृथिवी पर गिर पड़े। -

‘अस पाणि सुखस्पर्शस्तातम्या त्रिष्टकर्मण ।’

‘अत्रष्टकमा पिता के हाथ क स्पर्श था वह सुख अब कहा मिलेगा?’ यह कह कर भरत राने लगे। राजा के त्रिना राजशय्या उन्हें चन्द्रमा व बिना आकाश के समान दिखाई पड़ी। उन्होंने कैकयी से कहा—“राम कहा है?” इस समय पिता के न हान पर जा हमारे पिता, जा हमारे बन्धु और मैं जिनका दास हूँ—एस रामचन्द्र के दखन क लिए हमारा प्राण व्याकुल हो रहा है।” राम, लक्ष्मण और सीता को वनवास हुआ सुन कर भरत क्षण भर क लिए मूर्ति के समान खड़ रह गए और भाइ के चरित्र में आशका करके बाले—“राम न क्या किसी ब्राह्मण का धन छीन लिया था? क्या उन्होंने दीन-दुखिया को मताया था? अथवा परस्त्री में आसक्त हो गये थे, जिसमें उन्हें निवासन का दण्ड मिला?” अन्तिम प्रश्न के उत्तर में कैकयी ने कहा—

‘न राम परदारान् चक्षुभ्यामपि पश्यति ।’

‘रामचन्द्र पराई स्त्रियों को आँखों से भी नहीं देखते ।’

हिन्दी गद्य वाटिका

भरत का चेहरा कुम्हला गया और वे अपने को गारम्बार फोसने और दोषी ठहराने लगे। जोर से बोलन और दारुण शोक के कारण य मूर्च्छित हो कर पृथ्वी पर गिर पड़े। करुणामयी अम्बा जौशक्या प्रमभीरु कुमार के मन के भाव को समझ गई और उन्हें गोद में उठा कर रोने लगी।

भरत का शोक और उदासीनता व्रम से उठ चली। रामशान भूमि में मृत पिता के गले से लग कर वे राते राते गले—‘हे पिता, अपने दोनों प्यार पुत्रों को वन भेज कर आप कहाँ जाते हैं?’ सजल नेत्र और शारयिमूढ राजकुमार का वशिष्ठ ने ताडना कर के पिता की अन्त्येष्टि क्रिया करने में प्रवृत्त किया। शाक विह्वल हा कर भरत एक घेर मूर्च्छित हाकर गिर पड़े।

प्रात कात वन्दीजन भरत की स्तुति गाने लगे। उस समय भरत ने पागलों की तरह दौड कर उन्हें मना कर दिया—‘इक्ष्वाकु-वंश की प्रथा क अनुसार सिंहासन उड़ राजकुमार को मिलता है। तुम किस की वन्दना कर रहे हो? राजा की मृत्यु के चौदहवें दिन वशिष्ठ आदि मत्रियों ने भरत से राज्य ग्रहण करने का अनुरोध किया। भरत बोल—‘रामचन्द्र राजा बनेंगे। हम अयोध्या की सारी प्रजा को लेकर उन्हें पैरा पड कर मना लावेंगे। यदि वे न लौटे, तो हम भी चौदह वर्ष वन में रहेंगे।’

शत्रुघ्न मन्थरा को मारने और कैकेयी को ताडना देने लगे,

के योग्य नहीं हैं। हम क्या मुँह लेकर राजपत्र धारण करेंगे ? भोग विलास की वस्तुआ स हमें प्रयोजन नहीं। हम आज ही से जटा-बल्कल धारण करगे, भूमि पर सोपेंगे और फल पूज खा कर अपना जीवन व्यतीत करेंगे।'

इस प्रकार जटा बल्कलधारी शोकविमूढ राजकुमार भरद्वाज मुनि के आश्रम में जा कर रामचन्द्र का पता लगाने लगे। सर्वज्ञ ऋषि ने भी पहले सन्देह प्रकट कर भारत के मन की पीडा पहुँचाई थी। एक रात्रि भरद्वाज के आश्रम में आतिथ्य सत्कार ग्रहण कर मुनि के निर्देशानुसार राजकुमार ने चित्रकूट की ओर प्रस्थान किया। भरद्वाज ने भरत के डेरों में आ कर रामिया का देखना चाहा। भरत न इस प्रकार माताआ का परिचय दिया—'भगवन्, यह जो शोक और निरादर से क्षीण देह, सौम्य मूर्ति और देवताओं की तरह दिखलाई पड़ती है, यह हमारे अग्रज रामचन्द्र की माता है। यह जो बायें हाथ का सहारा लगाए उदास खड़ी और वन में सूखे हुए कर्णिकार पुष्पा के पेड की तरह शीयाङ्गी है, लक्ष्मण और शत्रुघ्न की जननी सुमित्रा है। और उन के पास ही यह, जिस ने अयोध्या की राजलक्ष्मी को विदा कर दिया है, वह पति घातिनी और सारे अनय की मूल, वृथा प्रज्ञामानिनी और राजकामुका इस अभागे की माता है।' यह कहते कहते भरत के दोनों नत्रा ने जल बहने लगा और क्रुद्ध सप की तरह

तुमुल शब्द से पशु पक्षी चारों ओर भागने लगे । रामचन्द्र ने प्रस्त हो कर लक्ष्मण से जिज्ञासा की—‘देखो, क्या कोई राजा या राजपुत्र इन इन में शिकार खेलने आया है ? अथवा किसी भीषण जन्तु के आन में इस सीम्प्य निकनन की शान्ति इस प्रकार भङ्ग हो रही है ?’ लक्ष्मण दीर्घपुष्पित शाल वृक्ष पर चढ़ कर इधर उधर देखने लगे, ता उन्हें पूर दिशा में फौज दिखाई पनी । उसे देख कर ये रोने—‘अग्नि बुझा दो, सीता का कहीं गुफा में छिपा दा और अम्त्र शरत्र ल कर सुसज्जित हो जाओ ।’ किसकी फौज आ रही है ? क्या कुछ समझ में आया ?’ लक्ष्मण ने इत प्रश्न का उत्तर दिया—‘पास ही वह वृक्ष जो दिखाई पड़ता है उसके पत्ता में स भरत की काविदारमुक्त * रथकी व्याजा दिखाई पड़ती है । अभिपेक होने से उनका मनारथ पूर्ण नहीं हुआ । अपन राज्य की शाभा का निष्फटक करन के लिए भरत हम लोगों का वध करने के लिए आये हैं । आज हम इस सब अनर्थ के मूल भरत का वध करेंगे ।’

रामचन्द्र बोले—‘भरत हमें लौटाने के लिए आये हैं । सब बातों को अच्छी तरह जान कर हमसे सदा स्नेह करने वाले, हमारे प्राणों से भी प्यारे भरत स्नेहाद् हृदय से पिता को प्रसन्न कर हमें लेने के लिए आये हैं । तुम उन पर अन्याय करने का

* भरत की फौज के झंडे का निशान ‘कोविदार था ।

और कृश भरत को ऋतिनता से पहचाना । उन्होंने उसे आदरपूर्वक भरत को जमीन से उठा लिया और उनके शिर को सूँघ और हृदय से लगा कर बाले—‘वत्स, तुम्हारा यह वेश क्या ? तुम्हें इस वेश से उन में आना उचित नहीं था ।’

भरत उठे भाई के चरणों में लट गये और बोले—‘हमारी जननी घोर नरक में गिर पड़ी है, आप उस की रक्षा कीजिये । मैं आप का भाई हूँ, शिष्य हूँ और दासानुदास हूँ । आप मुझ पर प्रसन्न हो अयोध्या चल कर सिंहासन पर बैठिये । बहुत बातें हुईं और बड़ा तनू पितृक हुआ । राम बोले—‘हम चौदह वर्ष तक वन में वास करेंगे । महाराज की प्रतिज्ञा पालन करना हमारा कर्तव्य है ।’ जब राम को किसी प्रकार अयोध्या चलने के लिए राजी न कर सक, तो भरत अनशन व्रत धारण कर उनकी कुटि के द्वार पर खरना देकर पड गए । भूमि पर लाटे हुए भरत का रामचन्द्र ने आदरपूर्वक उठा कर अपनी पादुकाएँ प्रदान कीं । भाई के पद रज से विभूषित पादुकाएँ भरत के जटाशूट को शोभित कर उनके शिर पर मुकुट के समान ददीप्यमान हो रही थीं । सहजा आभूषणों से जो शोभा नहीं आ सकती, इन पादुकाओं ने भरत को यही अपूर्व राजश्री प्रदान की । भरत ने विदा होते समय कहा—‘चौदह वर्ष तक हम आप की प्रतीक्षा में इन पादुकाओं की यात्रा लेकर राज्य का काम चलावेंगे । यदि इतने समय में आप नहीं आये, तो

उम्मे बोले—‘देख, आप हम अयोग्य के हाथ में जो राज्यभार छोड़ गए थे, उसे ग्रहण कीजिए। चौदह वर्ष में राजकोष में दस गुना जन बढ़ गया है।’

रामायण में यदि को-चरित्र ठीक आदर्श समझ कर ग्रहण किया जा सकता है, तो वह एक मात्र भरत ही का चरित्र है। सीता ने लक्ष्मण से जो कटु उचन कहे थे, वह क्षमा के योग्य नहीं है। रामचन्द्र के गालि एवं आदि अनक कार्यों का समर्थन नहीं किया जा सकता। लक्ष्मण की गालि तो कड़वा-पनी रुखी और दुर्गन्धीत हुई है। शौशल्या ने दशरथ से कहा था—‘इ जल जन्तु जिस प्रकार अपनी सन्तान भक्षण कर जाते हैं, तुमने भी उसी प्रकार किया है।’ किन्तु भरत के चरित्र में एक भी दोष नहीं। रामचन्द्र की पादुकाओं पर स्वर्ण छत्र धारण करनेवाले जटा-शल्कल धारी इस राजपि का चरित्र रामायण में एक अद्वितीय सौन्दर्य धारण कर रहा है। दशरथ ने सत्य ही कहा था—

‘रामादपि हि त मन्ये धर्मतो यत्तत्तरम् ।’

‘धर्म की दृष्टि से हम राम की अपेक्षा भरत को अधिक बड़ा मानते हैं।’

जब हम देखते हैं कि कौवेयी पैसे सुपुत्र की गभधारिणी थी, ता हम उसके सहयोगियों दोषों की क्षमा के योग्य समझते हैं। हम निवादाधिपति गुह के स्वर में स्वर मिला कर एक वाक्य

२६

रक्षा-चन्धन

लेखक—श्रीयुत विद्वन्मरनाथ कौशिक

[इनका जन्म सन १८९७ में अम्बाला छावनी में हुआ था, पर इनके दादा के भाई ने इन्हें गोद ल लिया। तब से आप कानपुर में रहते हैं। आप अंगरेजी, बंगाली, गुजराती और मराठी के अच्छे ज्ञाता हैं। आप हिन्दी के एक बहुत अच्छे उपन्यास लेखक हैं। 'माँ', 'चित्रमाला', 'भाष्म', 'समार' की अमम्य जातियों की स्त्रियों आपकी रचनाएँ हैं।]

[१]

'माँ में भी राखी बाँधूंगी ।'

आपकी धूमधाम है। नगरवासी स्त्री पुरुष बड़े आनन्द

करके उसने पुत्री से कहा—‘आ तुझे न्हिला (नहला) दूँ ।

बालिका मुख गम्भीर करके बोली—‘मै नहीं नहाऊँगी’ ।

माता—‘क्या, नहावेगी क्या नहीं’ ?

बालिका—‘मुझे क्या किसी के राखी बांधना है’ ?

माता—‘अरी, राखी नहीं बांधनी है तो क्या नहावेगी भी नहीं ? आज त्योहार का दिन है । चल उठ नहा’ ।

बालिका—‘राखी नहीं बांधूँगी तो त्योहार रहे का ?’

माता—(कुछ क्रुद्ध हासर) ‘अरी, कुछ सिडन हो गई है ।

राखी राखी की रटन लगा रक्खी है । उड़ी राखी बांधने वाली रनी है । ऐसी ही हाती तो आज यह दिन देखना पडता । पैदा होते ही पाप का खा रैठी । ढाङ्ग परस की होते होते भाई से घर छुडा दिया । तेर दी रमों से सर नास (नाश) हा गया ।’

बालिका बडी अप्रतिभ हुड और आखों मे आसू भरे हुए धुपचाप नहाने को उठ खडी हुई ।

×

×

×

एक घण्टा परचात् हम उमी बालिका का उसके द्वार पर खडा देखते हैं । इस समय भी उसके सुन्दर मुख पर उदासी विद्यमान है । अर भी उसके उद्रे उड़े नत्रा मे पानी छत्रछला रहा है ।

परन्तु बालिका इस समय द्वार पर क्या खडी है ? जान पडता है, यह किसी कार्यरत खडी है, कयाकि उसके द्वार के

युवक समझ गया। उसने मुग़र्रा पर अपना दाहिना हाथ आगे बढ़ा दिया।

शालिजा का मुख कमल खिल उठा। उसने बढ़े चाय से युवक के हाथ में राखी बाध दी।

राखी उँगवा चुम्बने पर युवक ने जेब में हाथ डाला और दो रुपय निकाल कर शालिजा को देने लगा। परन्तु शालिजा ने उन्हें लेना स्वीकार न किया। वह बोली—‘नहीं, यह नहीं, यह नहीं, पैस दो।’

युवक—‘ये पैसे से भी अच्छे हैं।’

शालिजा—‘नहीं—मैं पैसे लूँगी, यह नहीं।’

युवक—ले लो प्रियता। इसके पैसे मँगा लेना। बहुत से मिलेंगे।

शालिजा—‘नहीं, पैसे दो।’

युवक ने चार आन पैसे निकाल कर कहा—‘मच्छा, ले पैसे भी ले और यह भी ले।’

शालिजा—‘नहीं, खाली पैसे लूँगी।’

‘तुझे दोनों लेने पड़ेंगे’—यह कह कर युवक ने बल पूर्वक पैसे तथा स्पष्ट शालिजा के हाथ पर रख दिए।

इतन में घर के भीतर से किसी न पुगारा—‘अरी सरसुती, (सरस्वती) कहा गई?’

शालिजा ने ‘आई’ कह कर युवक की ओर कृतज्ञता पूर्ण

अमरनाथ—‘उन्नाय भी अश्य ही उतर होंगे’ ?

घनश्याम—(एक टण्डी साँम भर कर) ‘हाँ उतरा तो या, परन्तु क्याथ । उदा अत्र मेरा क्या रक्खा है’ ?

अमरनाथ—‘परन्तु उरो क्या । हृदय नहीं मानता है—क्या ? और सच पूछा ता वान ही ऐसी है । यदि तुम्हारे स्थान पर मैं होता ता कदाचित् मैं भी ऐसा ही करता’।

घनश्याम—‘क्या कहूँ मित्र, मैं तो द्वार गया । तुमको जानते ही ही कि मुझे लखनऊ आकर ग्हे एक बप हो गया और जय से मैं यहा आया हूँ मैंने उन्हें ढूँढने म कुछ भी कसर उठा नहीं रक्की—परन्तु सर क्याथ’ ।

अमरनाथ—‘उन्होंने उन्नाय न जाने क्यों छाड दिया और कर छोडा—इस का भी काइ पता नहीं चलता’ ।

घनश्याम—‘इसका तो पता चल गया न, कि ये लोग मेरे चले जाने के एक बप पश्चात् उन्नाव से चल गए । परन्तु कहा गये, यह नहीं मानूम’ ।

अमरनाथ—‘यह किससे मालूम हुआ’ ?

घनश्याम—‘उन्नी मकान वाल से जिसके मकान में हम लोग रहते थे’ ।

अमरनाथ—‘हा शोक’ !

घनश्याम—‘कुछ नहीं, यह सब मेरे ही कर्मों का फल है । यदि मैं उन्हें छोडकर न जाना, यदि गया था

हिन्दी गद्य-गाटिका

हैं। इस समय घनश्यामदास अपनी काठी के पाग में मित्रा सहित बैठे मन्द मन्द गीतल वायु का ध्यानन्द ले रहे हैं। आपस में हास्यरस पूरा गार्त हो रही हैं। बातें करते करते एक मित्र ने कहा—‘अजी, अभी तक अमरनाथ नहीं आये’।

घनश्याम—‘वह मनमौजी आदमी है। कहीं रम गया होगा’।

दूसरा—‘नहीं रम नहीं, वह आज कल तुम्हारे लिए दुल-हिन ढूँढने की निन्ता में रहता है’।

घनश्याम—‘बड़े दिवलगी बाज हो’।

दूसरा—‘नहीं दिवलगी की बात नहीं’।

तीसरा—‘हाँ, परसों मुझे से भी वह कहता था कि घनश्याम का विवाह हो जाय ता मुझे चैन पड़े’।

ये बातें हो ही रही थीं कि अमरनाथ लपकते हुए आ पहुँचे।

घनश्याम—‘आयो पार, बड़ी उमर—अभी तुम्हारी ही याद हो रही थी’।

अमरनाथ—‘इस समय बोलिए नहीं, नहीं एक आघ को मार बैठूँगा’।

दूसरा—‘जान पडता है, कहीं से पिट कर आये हो?’

अमरनाथ—‘तू फिर बोला—क्यों?’

है। और यहाँ उनका कौन पैठा है जो कहेगा ?

घनश्याम न ठण्डी साँस ली।

तीसरा—‘आपन क्या भलाई देगी जो यह सम्बन्ध करना है ?’

अमरनाथ—लडकी की भलाई। लडकी लक्ष्मी रूपा है। जैसी सुन्दर वैसी ही सरत। ऐसी लडकी यदि दीपक लेकर छुँदी जाय तो भी कदाचित् ही मिले।’

दूसरा—‘हाँ, यह अवश्य एक बात है।’

अमरनाथ—‘परन्तु लडकी की माता लडका देख कर विवाह करन को कहती है।’

तीसरी—‘यह तो व्यवहार की बात है।’

घनश्याम—‘और, मैं भी लडकी देख कर विवाह करूँगा।’

दूसरा—‘यह भी ठीक ही है।’

अमरनाथ—‘तो इसके लिए क्या विचार है ?’

तीसरा—‘विचार क्या, लडकी देखेंगे।’

अमरनाथ—‘तो कब ?’

घनश्याम—‘कल।’

[४]

दूसरे दिन शाम को घनश्याम और अमरनाथ गाड़ी पर सवार होकर लडकी देखने चले। गाड़ी चकर खाती हुई अद्विया

रानी की ओर कुछ अंधेरा था। इस कारण इन लोगों को उसका मुख स्पष्ट न दिखाई पड़ता था। घनश्याम उभे उठाने का उठे। परन्तु ज्योंही उन्होंने उसका मिर उठाया और रोशनी उसके मुख पर पड़ी त्योंही घनश्याम के मुख से निकला— 'मेरी माता'—और उठ कर वे भूमि पर बैठ गये।

अमरनाथ रिस्मिन हाफर काष्ठवत बैठे रहे। अन्त को कुछ क्षण उपरान्त रोले—उफ इश्वर की महिमा बड़ी विचित्र है। जिनके लिए तुमने न जान कहा कहा भी ठाकरे खाईं वे अन्त को इस प्रकार मिले'।

घनश्याम अपने माँ संभाल कर रोले—थोड़ा पानी मंगाओ'।

अमरनाथ—किससे मंगाऊँ। यहाँ तो कोई और दिग्वार ही नहीं पड़ता। परन्तु हाँ 'वह लडकी तुम्हारी'—कहते अमरनाथ रुक गए। फिर उन्होंने पुकारा—'बिटिया, थोड़ा पानी दे जाओ'।

परन्तु कोई उत्तर न मिला।

अमरनाथ ने फिर पुकारा—'बेटी तुम्हारी माँ अचेत हो गई है। थोड़ा पानी दे जाओ'।

इस 'अचेत' शब्द में न जान क्या बात थी कि तुरन्त ही घर के दूसरी ओर बरतन खडकने का शब्द हुआ। तत्पश्चात् एक पूरा वयस्क लडकी लोटा लिए आई। लडकी मुँह कुछ ढके हुए थी। अमरनाथ ने पानी लेकर घनश्याम की माता की

हिन्दी गद्य-वाटिका

आसन पर बिठाया और उनकी भगिनी सरस्वती ने उनके तिलक लगाकर राखी बांधी । घनश्याम ने दो अशफियाँ उसके हाथ में धर दीं और मुस्करा कर बोले—‘क्या पैस भी देने हगि ?

सरस्वती ने हँस कर कहा—‘नहीं, भैया, ये अशफियाँ पैसां से अच्छी हैं । इनसे बहुत से पैसे आवेंगे ।



हिन्दी गद्य साहित्य

उस समय कुम्भ का मला था। हजारों यात्री, सन्ध्यामी प्रभृति वही एकत्र हुए थे। अन्ततः जन राशि से उस महानीय का जलर आच्छादित था। पुण्य पीयूषसाहिनी भगवता जाह्नवी और यमुना का सगम ! यमुना क कृष्ण जल का जाह्नवी के शुभ्र जल से मिलन ! यह दृश्य बहुत ही सुन्दर तथा मनोरम था।

कुछ दिन तो शशिशेखर ने किसी न किसी तरह व्यतीत किए। नवीन स्थल पर नवीन दृश्य देख कर किस का हृदय पुनर्कित नहीं होता। शेखर न प्रहुरिधि सन्यासियों के साथ इतगतत परिभ्रमण करके मन को बहुत कुछ स्थिर किया। परन्तु यह स्थिरता कितने दिनों के लिए थी ! शान्ति का फिर नाश हो गया। शशिशेखर अन्धियर चित्त से देश विदेश में परिभ्रमण करने लगे।

[३]

सुधा के हृदय में भाव उठा—‘उन्हें एक बार और देख पानी तो अच्छा हाता। उनमें प्रियोग हुए बहुत दिन हो गए’। उस तैल चित्र के समक्ष बैठकर सुधा कहने लगी—‘भागिनी ! तुम जैसी भाग्यशीला ससार में अन्य हैं ! तुमने पति के हृदय मन्दिर में स्थान लाभ किया। मैं हूँ भागिनी हूँ जो तुम्हारा द्रव्य छीनने का प्रयत्न करती हूँ’।

सुधा और न बोल सकी। नयन मोचित अश्रुधारा से

धुत्पिपासा ने भी त्रियोग हो गया। इस त्रियोग के कारण मुधा की सुन्दर लावण्यमयी देह भी अत्युज्ज्वल कान्ति प्रमश क्षीण होने लगी। दहलता निज्जति सी हो गई। तब पुत्र शाकातुरा नाम न कहा— 'चत, मैं तुझे वृन्दावन ले चलूँगी। मैं भी अपनी शेष अग्रग्या श्री गोविन्द के पादपद्मोंमें अर्पण करूँगी'।

शैवलिनी रोती—'माता ! अच्छी बात है। चलो, हम सब रवि का सग लेकर दादा को खाज। व फिर न कहीं घले जाय। वही भी पागल सी हानी जानी है'।

वृन्दावन के लिए यात्रा म्यिर हुई। उसी दिन सन्ध्या को रविशेखर व साथ सत्र ने पुण्य तीर्थ वृन्दावन का गमन किया। जो घर सदा ही आनन्द जहरी से मुखरित होता था, वही आन नित्रिड निरतन्धता में परिणत हो गया।

[४]

नील-सलिला खच्छा यमुना आज नीरव म्यर से वह रही है। पर हाय ! उम वांसुरी का स्वर नहीं। इसी से आज यमुना उदास होकर वह रही है। जिम वांसुरी के शब्द को सुन कर गृह-गमिनी गाणिकाएँ उदास हा जाती थीं, हाय यमुने ! तुम्हारे तट पर से वह वांसुरी का स्वर कहा गया ? और आज महामाया राधारानी कहा हैं ? वृन्दावन में यद्यपि तुम्हारा सत्र कुछ है, परन्तु वह मोहन मुरली नहीं है। यमुने,

परित्याग कर के साध्वी सुधा श्री मा प्रव के चरणारविन्दों में प्रार्थना करनी थी—‘प्रभु ! हमार स्वामी की रक्षा करो ।’

कितनी ही नीरव रजनियाँ व्यतीत हो गईं; परन्तु शेखर श्री अवस्था में कुछ भी परिवर्तन न हुआ । ज्वर की ज्वाला से वे बकने लगे—‘मेरा जीवन आज शेष होना चाहता है । मुझे अपने पास बुला ला ।’ माता और सुधा चुपचाप रोने लगीं । अच्युतानन्द ने कहा—‘तुम अधीर न हो । तुम्हारे अधीर हान में रोगी की अवस्था और भी बिगड़ जायगी ।’ तब बहुत कष्ट होने से उन्होंने आत्मा सपरण किया । परन्तु हृदय में शान्ति न हुई ।

शेखर की अवस्था क्रमशः बिगड़ने लगी । कभी कभी वे प्रेम की स्थिर दृष्टि से सुधा के मुख मण्डल की ओर देखने । एक दिन वे कह उठे—‘शैल ! हमारे पास आई हो ? चलो, प्राणेश्वरी ! हम दोनों हाथ पर हाथ रख कर अनन्त पथ पर चलें । हमें कोई राधा नहीं दे सकता ।’ दारुण शोक-यातना से सुधा चिल्ला उठी । उनकी चिल्लाहट सुन कर शेखर का ज्ञान हुआ । वे कहने लगे—‘सुधा ! तुम रोती हो ? रोओ मत । अपने तप्त अश्रुजल से मेरे हृदय को सन्तप्त न करो । मुझे जाने दो । यह जीवन तुम्हारे साथ व्यतीत नहीं हो सकता । यदि मरणोपरांत फिर जन्म होगा, तो मेरा तुम्हारा मिलन होगा । तब मैं तुम्हें और शैल को ले कर सुखी रहूँगा’ । इतना कह शेखर निम्बर हो गए । रोन्धमाना सुधा

आश्रम परित्याग न किया। शंकर की माता ने यथार्थ ही मात्र एक पाद पत्र में आत्म समपण पर दिया। उसी आत्म समपण के कारण उसने निदाघ्य पुत्र शोक पर जय प्राप्ति की। जब मनुष्य का चित्त भगवान् के पाद पत्र में आकृष्ट हो जाता है, तब उसे पारिव शोक व्याकुल नहीं कर सकते। और बालिका सुधा। हाय! उत के तमाङ्ग में आज शुभ्र वस्त्र शोभा पा रहे हैं। यह हृदय विदारक दृश्य है। दृश्य सत्तार के प्रति वैराग्योत्पत्तकारी है।

सुधा प्रति मुहूर्त निज जीवन के शेष दिनों की प्रतीक्षा करती रही।

सुधा जान गई थी कि प्रेम अविनश्वर है। मृत्यु के उपरान्त भी प्रेम का नाश नहीं होता। प्रेम स्वर्ग में भी मिलता है। ऊपर की तरफ हाथ उठा कर वह योत्न उठी—हृदयेश। प्राण बल्लभ। प्राण जीवन। तुम मृत दूर होते हुए भी मेरे हृदय से दूर नहीं। मैं इस हृदय मन्दिर में चिरदिन तुम्हारी पूजा करूँगी। मेरा देवता दूसरा नहीं। मेरे देवता तुम्हीं हो। यदि साधना की जीत हुई, मेरा जीवन शेष होने पर तुम से अवश्य मिलन होगा। हे प्रियतम! तब भी तुम मुझे फिर चरण से मत दवेलना*।

—घण्टीप्रसाद

*उद्ग भाषा के प्रसिद्ध लेखक श्रीयुक्त यतीन्द्रनाथ सोम, एल० एम० एम० की "सुधा" नामक कहानी का भाषानुवाद।

रक्षा करने के लिए चीनियाँ ने जो इतिहास प्रसिद्ध दीवार बनाई थी उसका कुछ अंश इस पूर्वी तुर्किस्तान में भी था। इन प्रान्त में पहले कई बड़े बड़े नगर थे। ग्रीकों के विहारों और मठों में यह प्रान्त सबभरा हुआ था। इन मठों में बड़े बड़े बौद्ध विद्वान निवास करते थे। वे हजारों विद्यार्थियों को विद्यादान करते थे। उन्होंने बहुतसारी पुस्तकालयों की स्थापना की थी। जो बौद्ध भ्रमण चीन से भारत और जो भारत से चीन जाते थे वे इन्हीं मठों और विहारों में ठहरते हुए जाते थे। इन लोगों के कार्पिने के कार्पिने चलते थे। चीनी परित्राजक ह्येनसांग और इत्सिंग आदि इसी मार्ग से भारत आए थे। उनके यात्रा वृत्तान्तों में इस मार्ग में पड़ने वाले नगर, नदियाँ, पर्वतों, रेगिस्थानों आदि का बहुत कुछ उल्लेख पाया जाता है।

कालान्तर में अरब मुसलमानों का जोर बढ़ने पर उन्होंने चीन और भारत के बीच के इस राजमार्ग को धीरे धीरे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। मठों, स्तूपों और विहारों को उजाड़ दिया। हजारों बौद्ध भ्रमणों को तलवार के घाट उतार दिया। नगरों को तहस नहस करके उनकी जमींदोज कर दिया। ये सभी स्थान बालू के टीलों में परिणत हो गए। स्तूपों के कारण उड़ी हुई बालू ने इन सबको अपने नीचे यहाँ तक दबा लिया कि इनका नामोनिशाँ तक न रहा। अपने ऊपर आई हुई या आने

वना। इसके बाद रूस के रहने वाले दो पुरातत्ववेत्ताओं ने सन् १८६६-६७ ईसवी में उसी तुर्किस्तान के तुरफान प्रान्त में खोज की। उन्हें अपनी खोज में जो चीजें मिलीं उनका विस्तृत वर्णन उन्होंने अपनी भाषा में प्रकाशित किया। उनकी देखा देवी फिनलैंड के भी कुछ पुरातत्वज्ञों ने उस रेगिस्तान में पदार्पण करके वहाँ का कुछ हाल लिखा। इस तरह, धीरे धीरे, लोगों का कौतूहल बढ़ता ही गया। अन्त में रूसी विद्वान रैडलफ ने, सन् १८६६ ई० में, पुरातत्व विशारदों की एक सभा में इस बात का प्रस्ताव किया कि पूर्वी और मध्य एशिया के खण्डहरों की बाकायदा जांच की जाय। यह प्रस्ताव पास हो गया। तब से इन प्रान्तों की जांच के लिए कई देशों के विद्वानों के यूँ के यूँ बहा पहुँचे और अनेक बहुमूल्य पुस्तकों, मूर्तियों, चित्रों आदि का पता लगा कर उन्होंने उन पर उड़े मार्क के लेख प्रकाशित किए। यहाँ तक कि सुदूरपच्छिमी जापान तक ने कई विद्वानों को भेज कर वहाँ खोज कराई। वे लोग भी कितनी ही बहुमूल्य सामग्री अपने देश को ले गए।

१८६१ इसवी में ब्रिटिश गवर्नमेण्ट के एक दूत चीनी-तुर्किस्तान में थे। उनका नाम था कप्तान वायर। उन्हें भोज पत्र पर लिखा हुआ एक ग्रन्थ मिला। उसे उन्होंने बङ्गाल की एशियाटिक सोसायटी का भेज दिया। डाक्टर हानली ने उसे पढ़ा। मालूम हुआ कि यह गुप्त नरेशों के समय की देवनागरी लिपि

उनकी लिखी हुई पुस्तक—'प्राचीन तुनन' (Ancient Khotan) में सविस्तर पाया जाता है। इसके बाद डाक्टर साहब ने चीनी तुर्किस्तान पर दो चढाइयाँ और कीं। उनकी तीसरी चढाइ सन १६१३ में हुई। सन १६०६ इसकी यात्री दूसरी चढाइ में उन्हें एक ऐसी मोठरी मिली जो बाहर में बन्द थी, परन्तु भीतर जिसके पुरतक़े भरी हुई थीं। इन पुरतक़े का कुछ ही अग डाक्टर स्टान को मिला; अवशिष्ट अग एम० पालियो नाम के एक फूँच विद्वान् के हाथ लगा। इस चढाइ का बहुत ही विशद अणन डाक्टर स्टान ने पाँच बड़ी बड़ी जिन्दा में किया है। वे प्रकाशित भी हो गई हैं। उनका नाम है सेरिंडिया (Serindia)।

अपनी दूसरी चढाइ में जिन समय डाक्टर स्टान तुर्किस्तान में प्राचीन चिन्हां और वस्तुग्रा की खोज कर रहे थे उसी समय मध्य एशिया में खोज करने के लिए फ्रॉस की राजधानी पेरिस में एक परिषद् की स्थापना हुई। उसकी सहायता फ्रॉस की गवर्नमेंट ने भी धन से की और कई एक अन्य सभाओं ने भी की। इस परिषद् ने एक चढाइ की योजना की। एम० पालियो, जिनका नाम ऊपर एक जगह आया है, इसका प्रधानाध्यक्ष नियत हुए। वे बज-बल समेत जून सन १६०२ में पेरिस से रवाना हुए और मास्को, ताशकन्द होते हुए, पामीर के उत्तर काशगर तक पहुँच गए। यहाँ आस पास खोज करते हुए वे तुन हाग नामक स्थान में पहुँचे। इससे

हिन्दी गद्य वाटिका

दीवार सी मालूम हो, किसी को यह सन्देह न हो कि यह गुफा है और इस के भीतर पुस्तक भरी हुई हैं। मुसलमानों ने पुस्तकालय के इस संग्रह के खामी बौद्धों की क्या दशा की, कुछ मालूम नहीं। तब से सन् १६०६ ईसवी तक यह गुफा खरब-बन्द रही।

इस गुफा के भीतर काइ १५ हजार पुस्तकें—संस्कृत, प्राकृत, चीनी, तिब्बती तथा कई अन्य अज्ञात भाषाओं और लिपियों में—मिलीं। रेशम के टुकड़ों पर खिचे हुए सैकड़ों अक्षरमाला चित्र भी प्राप्त हुए। पुस्तकें सभी ग्याग्हर्षी सदी के पहले की हैं। कितनी ही ब्राह्मी लिपि में हैं। अधिकतर पुरतकों का सम्बन्ध बौद्ध धर्म से है। परन्तु काव्य, साहित्य, इतिहास, भूगोल, दर्शन आदि शास्त्रों से ही सम्बन्ध रखने वाली पुस्तक इस पुस्तकालय से मिलीं। संस्कृत भाषा में कितनी ही लिखी हुई पुस्तकें इसमें पसी हैं जो भारत में सर्वथा अप्राप्य हैं। यहाँ तक कि इसकी अनेक पुरतकें, जो चीनी भाषा में हैं, चीन में भी दुर्लभ क्या अलभ्य ही हैं। पुराने बही खाते, रोजनामचे और दस्तावेज तक मिले। इन सब का प्रकाशन धीरे धीरे हो रहा है।

इससे स्पष्ट है कि प्राचीन भारत ने मध्य एशिया की राह चीन, मीस्तान (शकस्थान) और यूनान आदि को विद्या-दान देने और उन्हें सम्य बनाने का कितना काम किया था।

[सरस्वती]

जैसे उद्दण्ड बादशाह का भी एक बार उसके सामनेमे भागना पडा था। परन्तु हमीर का ये राक्षसीभी वीरान की अज्ञानता तथा अकृतज्ञता से रणधन्धार जैसे अजेय दुग पर मुसलमाना का झण्डा फहराया।

अन्त उद्दीन बादशाह क महेमाशाह नामक एक मुसलमान दरबारी से एक अपराध बन पडा। बादशाह ने इस अपराध की खबर पाते ही उसे प्राण दण्ड की आज्ञा दे दी। महेमाशाह को इस ख़तर आज्ञा की सूचना पहले मिल चुकी थी। इस त्रिण उसन भाग कर शरणागत उत्सव थीर हमीर की शरण गी।

यह सुन कर बादशाह ने हमीर का कहला भेजा कि मैं ने सुना है कि तुमने महेमा को शरण दी है। क्या तुम को मालूम न था कि वह शाही अपराधी है? अथवा क्या तुम में मेरा प्रताप विदित नहीं है, जो तुमने ऐसी धृष्टता की है? क्यों व्यर्थ पतङ्गे की भाँति महुदुम्ब प्राण देने को उद्यत हुए हो? इसलिए महेमा को मेरे पास भेज कर क्षमा प्रार्थी गनो। नहीं तो मैं अभी ही आफर तुम्हारी इस उद्दण्डता का उचित पुरस्कार दूँगा।

दूत द्वारा बादशाह क इस सन्देश को सुनते ही, गीर हमीर दूत से फडक कर बोले—बादशाह से यह देना कि हमीर ऐसी धमकियाँ से डरने वाला नहीं है। मैंने उसी वश मे जन्म लिया है जिसके एक नरेश ने गहाबुद्दीन गोरी को सात बार हराया था और उसे गान्त बार ही सही-सलामत

एक बार अपने अपराधी को मागा, परन्तु उस को फिर भी वही निर्भीक उत्तर मिला ।

मैहमा शाह भी बड़ा वीर पुरुष था । वह तीर चलाने में अद्वितीय गीर था । ऐसा कहा जाता है कि युद्ध आरम्भ होने के दिन की पहली रात्रि को, किले के ऊपर खुली छत पर, हमीर का दरबार लगा हुआ था और नाच हो रहा था । सब राजपूत आनन्द मना रहे थे । कल युद्ध होने वाला है, इसकी किसी को कुछ भी परवाह नहीं थी । एक वीर राजपूत के लिए इसमें उद कर आनन्द की बात और क्या हो सकती है ? उनके शास्य में तो लिखा है कि क्षत्रिय को युद्ध में मरने से स्वर्ग मिलता है । फिर भला लडाइ में मरने में कौन डरेगा ? हमीर का ऐसा निभय ढङ्ग देख कर, अलाउद्दीन जैसे वीर मनुष्य का भी कन्नेजा दहल गया । उसके मुख पर निराशा के चिह्न स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगे । यह देख कर मैहमा का भाइ मीर गावरू, जो कि बादशाह की फौज में था, बोला—आप इतने निराश क्यों होते हैं ? मैं अभी हमीर के रङ्ग में भङ्ग किये दता हूँ । ऐसा कह कर उसने एक थोथा तीर पातुर की गडी पर मारा, जिस से वह बेचारी धडाम से गिरपडी । यह देख कर हमीर के मन में कुछ शङ्का हुई । परन्तु मैहमा ने आगे बढ़ कर कहा कि महाराज, यह काम मेरे भाइ का है,

कि मैं दुर्ग को पतल करवा दूँगा। वीर राजपूत अपनी विजय के लिये जी तोड़ कर लड़ रहे थे। उन्हें दुष्ट सुरजन की दुष्टता की कुछ भी खबर न थी। उस समय मन्त्री न आकर हमीर से कहा—महाराज, दुर्ग की भोज्य सामग्री समाप्त हो गई है। 'जोरा भार' नामक खास खाली हो गए हैं। अन्न सामग्री एकत्र करना दुस्साध्य है। यह सुनते ही वीर हमीर के ऊपर वज्रपात सा हो गया। वह अवारू रह गया। सरल हृदय हमीर उसकी दुष्टता न समझ सका।

रात्रि को एक दरवार मिया गया और सब सरदारों की राय पूछी गई। किले में बन्द होकर भूखों मरना वीर-हृदय राजपूतों को कत्र पसन्द आ सकता था। और अधीनता स्वीकार करना तो उनका अपना गला घोटना था। सब ने एकमति होकर जोहर करने की सम्मति दी। इस समय इस प्रकार हमीर को सङ्कट में देख, भैरमाशाह जाला—महाराज, आप चिन्ता न करें। यह सब लडाई मेरे पीछे है। मुझे बादशाह के हवाले कर दीजिये। यह सुनकर हमीर बोले—यह कभी नहीं हो सकता कि मैं राजपूत और राजा हो कर एक शरण आप हुए मनुष्य को वचन दे कर पकडा दूँ। धिक्कर हूँ मुझे और मेरी माता को, यदि मैं ऐसा विचार भी करूँ ! जत्र तक शरीर में प्राण है तत्र तक तुझे प्राणों से अधिक मानता हूँ।

के शत्रु की धरने राजपूत-बलों की विरह गङ्गा न स-
 च्छविज होने लगी। यह विरह का समय न इत रण-
 क्षणिक भेद कर जो बाग्गाही भाग जा किले की धरने
 देव, और करने का उद्देश्य है, ये बहुत शाप मन्त्रों से बुरा
 धार। उनके दृष्टिगोचर होत ही सेना में विरह गङ्गा पर
 'हमीरराज की भय' का उक्थारण करके डरना स्वभा
 किया।

यह, अरनी सेना को शत्रु द्वारा उचैभित करके बरह
 भूमि में जा डट। दोनों सेनाओं के आमने-सामने हात हाथ पर
 प्रमात्मान युद्ध आरम्भ हो गया। वीर दुग्ध अपन शत्रुओं का
 शत्रुभा का रुधिर पान कराने लगे। येर हमीर भी शाही सेना
 का मयन करने लगा। यह गर उसने बादशाह व हाथी का
 धोर काव किया, परन्तु धनकार्य न ही सका। अन्त में बादशाह
 का हठ टूट गया और राजपूतों की सच्ची वीरता के सामने
 मुसलमान लोग न ठहर सके और धीरे धीरे पीछे हटने लगे।
 राजपूत वीर भी उत्साहित हो गडी वीरता से लड़ने लगे।
 जब मुसलमान लोग उनके सामने न डट सके और बची हुई
 सेना के साथ बादशाह भाग निकला। हमीर के सैनिकों ने
 बादशाह से शाही निशान छीन लिए। आनन्द म मान
 भीसे हुए पिशानों को सेना के आगे किए हमीर लौटे।

क शब्द की ध्वनि राजपूत वीरों की विकट गर्जना में प्रति ध्वनित होने लगी। अब शिलम्ब का समय न देय, रानी ने अन्तिम भेंद कर और राक्षसाही सेना को मिल की ओर बढ़ते देख, जोदर करने का उपदेश दे, वे उद्धृत शीघ्र महत्ता में गहर आए। उनका दृष्टिगोचर होते ही सेना ने विशद गर्जना करने 'हमीरराय की जय' का उच्चारण करके उनका रणगत किया।

रत, अपनी सेना का शब्द द्वारा उत्तेजित करके वे रण भूमि में जा डटे। दोनों सेनाओं के सामने सामने होने ही घोर प्रमासान युद्ध आरम्भ हो गया। वीर पुंस्य अथवा खड्गों को शत्रुओं का रुधिर पान कराने लगे। और हमीर भी शाही सेना का मग्न करने लगा। कई बार उसने राक्षसाह के हाथी की ओर रुख किया, परन्तु घनकाय न हो सका। अन्त में राक्षसाह का हठ टूट गया और राजपूतों की सच्ची वीरता के सामने मुमलमान लाग न ठहर सके और धीरे धीरे पीछे हटने लगे। राजपूत वीर भी उत्साहित हो उड़ी वीरता से लड़ने लगे। अब मुसलमान लाग उनके सामने न डट सकें और रची हुई सेना के साथ राक्षसाह भाग निकला। हमीर के सैनिकों ने राक्षसाह से शाही निशान छीन लिए। आनन्द में मग्न होते, जीते हुए निशानों को सेना के आगे लिए हमीर जाँटे।

मुसलमानों के निशानों को दूर से आते देख कितने के

हिन्दी गद्य-याटिका

प्रसन्नता का व्रत पाजा और राजा शिवि की भाँति अपनी
कीर्ति अटक कर गये। हमीर की दृढ़ता उगम करते हुये
किसी कवि ने कहा है—

सिंह-गमन, सत्पुरुष वचन कदजि करै इर यार ।

तिरिया तेज हमीर-दृठ, घटै न दूगी यार ॥

आज तर यह दोहा उड़े ही आदर क साथ हमीर का
नाम स्मरण कराता है ।

—बुधर नारायण सिंह
(“भारतीय आत्मरथात्” से)



पडता है जिससे उस भिन्नता में भी एकता रचापित हो जाय। यही सत्य का अन्वेषण है, वह मनु और व्यष्टि में समष्टि।

भारतवर्ष के इतिहास में मनुपूर्व घटना भिन्न भिन्न जातियाँ का पारस्परिक सम्मिलन है। अन्य देशों की अपेक्षा भारत में जाति प्रेम की समस्या अधिक उठिन थी। योप में जिन जातियाँ का सम्मिलन हुआ है उनमें इतनी विषमता नहीं थी। उनमें से अधिकांश की उत्पत्ति एक ही शाखा से हुई थी। इसमें सन्देह नहीं कि उनमें जातिगत उद्वेग और विराध की मात्रा कम नहीं थी तो भी कदाचित् उनमें कुछ भेद नहीं था। यहाँ फारस है कि इंग्लैंड में सैक्सन और नार्मन जातियों में इतना शीघ्र मिलाप हो गया। सच तो यही है कि सभी पश्चात्य जातियों में कुछ और शारीरिक गठन की समता है। यही नहीं, किन्तु उनके आदर्शों में भी अधिक भेद नहीं है। इसी लिए उनका पारस्परिक सम्मिलन में बाधा नहीं आती। परन्तु भारतवर्ष में यह दशा नहीं है। प्राचीन काल में श्वेतांग आर्यों का कृष्णकाय आदिम निवासियों से मिलाप हुआ। फिर द्राविड जाति से उनका सघर्षण हुआ। उस समय द्राविड जाति भा सम्यगी और उनका आचार व्यवहार आर्यों के आचार व्यवहार से सबथा भिन्न था। यह विषमता दूर करने के लिए तीन ही उपाय थे। एक तो यह कि इन जानियों का नाश ही कर दिया जाय। दूसरा -

उनको वहाँ से हटा दिया। इसके बाद महमूद गजनवी का आक्रमण हुआ। उस समय भी मुसलमानों का प्रभुत्व यहाँ स्थापित नहीं हुआ। सन् ११६३ से मुसलमानों का शासन युग प्रारम्भ हुआ। उत्तर भारत में उनका साम्राज्य स्थापित हो जाने पर भी दक्षिण में हिन्दू साम्राज्य रहा। विजयनगर का पतन होने पर कुछ समय के लिए समग्र भारत पर से हिन्दू साम्राज्य का लोप हो गया। परन्तु सत्रहवीं सदी में मरहठे प्रबल हुए, और अन्त में उन्होंने फिर हिन्दू साम्राज्य की स्थापना की। इसी समय अंग्रेजों का प्रभुत्व उठा और कुछ ही समय में हिन्दू और मुसलमान दोनों को अंगरेजों का आधिपत्य स्वीकार करना पडा।

यद्यपि भारतवर्ष में मुसलमानों का साम्राज्य सन् ११६३ से प्रारम्भ होता है, तथापि कितने ही मुसलमान साधक और पत्थीर इन आक्रमणकारियों के पहले ही यहाँ आ चुके थे। आठवीं सदी में जब मुसलमानों ने भारत का एक भाग विजय कर लिया तब तो हिन्दुओं और मुसलमानों में घनिष्ठता हो गई। उस समय मुसलमानों का अभ्युदय उठ रहा था। बगदाद विद्या का कन्द्र हो गया था। कितने ही भारतीय विद्वान् खलीफा के दरबार तक जा पहुँचे। वहाँ उन लोगों की उदात्त सङ्कलन के कितने ही ग्रन्थों का अनुवाद अरबी भाषा में हुआ। भारत में मुसलमानों ने केवल अपनी प्रभुता ही स्थापित

कहें क़रीर सुनो भइ साधो, इन में कौन दियाना ॥

स्वदेश की कल्याण कामना से प्रेरित हो क़रीर उम पथ को खोज निम्नजना चाहत थे, जिम पर हिन्दू और मुसलमान नाना चल कर आत्मान्ति कर सक । परन्तु हिन्दू एक बार जा रहे थे तो मुसलमान ठीक उमके विपरीत जा रहे थे । क़रीर न उनको चेतावनी दी—

अर इन दुहु राह न पाई ।

हिन्दू की हिन्दुवाह देयी तुरफन की तुरकाई ।

कहें क़रीर सुनो भई साधो कौन राह हूँ जाई ॥

इसी लिए क़रीर ने हिन्दू की हिन्दुवाह और तुर की तुरकाइ दोना का छोड दिया । उन्हां न केवल मनुष्यत्व को ग्रहण किया—

हिन्दू कहूँ तो मैं नहीं मुसलमान भी नाहिं ।

उन्हाने दोना को एक ही दृष्टि से देखा—

सम दृष्टी सतगुरु किया मटा भरम विकार ।

जहँ देखा तहँ एक ही साहेब का दीदार ॥ (१) ॥

सम दृष्टी तब जानिए सीतल समता होय ।

सय जीवन की यातमा जगें एक सी सोय ॥

क़रीर का प्रयाम व्यथ नहीं हुआ । हिन्दू और मुसलमान सम्मिलन की बार अग्रसर हुए । भाषा के क्षेत्र में इनका सम्मिलन बहुत पहले हो चुका था । अमीर खुसरो ने इस

हिन्दी गद्य-वाटिका

परम हस तेहि मानस जइस पूज मैह रास ॥

जो उनका दर्शन करना चाहते हैं उन्हें अपने हृदय को
सदैव रचतु रखना चाहिए—

तन दरपन कहँ साज दरसन देखा जो चहइ ।

मन सा लीजइ माज, महमद निरमज होम किया ।

उन्होंने एकत्ववाद की सदैव शिक्षा दी है—

एक कहत दुइ होय दुइ सं राज न चति सकइ

रीच तँ आपहु खोय महमद एकाग्र होइ रहइ ॥

भोग्य और भोक्ता में भी उन्होंने कोई भिन्नता नहीं देखी है—

सबइ जगत दरपन रुइ लेखा,

आपुहि दरपन आपुहि देखा ।

आपुहि बन अउ आपु पखेरू,

आपुहि सउजा आप कहेरू ॥

आपुहि पुहुप फूल गति फूले,

अपुहि भँवर रास रस भूले ।

आपुहि फल आपुहि रखारा,

आपुहि सो रस चाखन हारा ।

आपुहे घट गट मैह मुख चाहइ,

आपुहि आपन रूप सराइ ।

आपुहि वागद आपु मसि आपुहि लिखन हार ।

आपुहि लिखनी अखर आपुहि पंडित अपार ॥

लिए घटा प्रजाते हैं । एक दिन मैं मन्दिर् जाता हूँ और एक दिन गिर्जा । पर मन्दिर् मन्दिर् में मैं तुम्ही का गोजता हूँ । तुम्हारे शिष्या न लिंग सत्य न ता प्राचीन है और न नवीन । अतुल पञ्जत न यद् उद्धार मध्ययुग का नवीन सन्देश था । हिन्दा म सुरदाम और तुतसी दास न अपन युग की इसी भावना में प्ररित हो मनुष्य जीवन में श्रेष्ठ आदर्श दिखलाया । उसी भाव को ग्रहण कर मुसलमानों में रहीम ने कविता लिखी । निमलिखित पत्रों में प्रकट हो जाता है कि रहीम ने हिन्दू भाव को कितना अपना लिया था ।

अनुचित वचन न मानिए जदपि गुराइस गाढि ।
 है रहीम गधुनात्र ते सुजस भरत का गढि ॥
 कभला थिर न रहीम कहि यह जानत सर फोय ।
 पुरुष पुरातन की गधु, क्यों न चचला होय ॥
 गहि सरनागाति राम की भयसागर की नाय ।
 रहिमन जगत उधार कर और न कष्ट उपाय ॥
 जो रहीम करिगो हतो प्रज को इहै हयाल ॥
 तो काहे कर पर धरयो गावर्धन गोपाल ॥

मुगलों के शासन काल में हिन्दी-साहित्य की जो श्री-वृद्धि हुई उसका कारण यही है कि उस समय मुसलमान भारत को स्वदेश समझने लगे थे । न तो हिन्दुओं ने

हिन्दी साहित्य को अपनी रचनाया में अजकृत किया है ।

राजनीति के क्षेत्र में हिन्दू और मुसलमान जाति का विरोध दूर नहीं हुआ । समाज के क्षेत्र में भी दोनों का सघर्षण बना रहा । तो भी साहित्य के क्षेत्र में दोनों ने सत्य का ग्रहण करने में सङ्कोच नहीं किया । इसी चिरन्तन सत्य के आधार पर—इसी ऐश्वर्य मूलक आध्यात्मिक आदर्श की भित्ति पर—भारत ने अपनी जातीयता की स्थापना की है । इसी जातीयता में सभी जातियाँ अपने अस्तित्व को स्थिर रख सकती हैं । इसमें सम्मिलित होने के लिए हिन्दू ने अपना हिन्दुत्व नहीं छोड़ा और न मुसलमान ने अपना धार्मिक और सामाजिक संस्कार परित्याग किया । परन्तु इन दोनों का मिलन अनन्त सत्य के मन्दिर में हुआ, जहाँ गृह्य आचार व्यवहार और कृत्रिम जाति भेद के अन्धन से मनुष्यजाति की एकता भिन्न नहीं होती । यह एकता काल्पनिक नहीं है । यह हिन्दू और मुसलमान के जीवन में अभी तक काम कर रही है । सत्य की सीमा सङ्कुचित कर देने से ही इनमें परस्पर विरोध होता है । ईश्वर में ही सभी विरोधों का मिलन होता है । इस लिए उसी को अपना लक्ष्य मानकर भारत ने अपनी जातीयता की सृष्टि की है । यहाँ एक ओर समाज में आचार-विचार की रचना होती आई है और दूसरी ओर मनुष्य की एकता को जोग रबीकार करते आए हैं । एक ओर भिन्न भिन्न वर्णों में

४३

महाभारत

लेखक—श्रीयुत सूर्य कुमार वर्मा

अँधेरी रात है। पृथ्वी से लेकर आकाश तक अँधेरा छाया है। एक शिपिर म एक चिरगा टिमटिमा रहा है। वहाँ एक लो रँठी हुड ह। उसकी आँखें रोते रोते सूज गई हैं। गाला पर सूसे हुए यासुग्रां क चिन्ह दिखाई पडते हैं। यह अपना प्राया हाथ गाल पर रक्से बैठी है। उसके कश धूल के कारण मलिन हो रहे हैं और नटें छूट रही हैं।

* यह निबन्ध बंगाल के सुप्रसिद्ध लेखक श्रीयुत नवीन चन्द्र सेन के कुरक्षेत्र नामक काव्य के मंत्रहों मग के आधार पर लिखा गया है।

‘तुम कौन ?’

‘मैं रत्नाला शैलजा ।’

‘हिं, हिं, तू स्वप्न की देवी है । मैं स्वप्न में देखा कि मैं पूर्णचन्द्र के अक्षरमाल पर मे अन्धकारमय पाताल के ऊँठे पत्थरों पर जा पड़ी हूँ । मेरा शरीर धूर धूर हो गया है । हृदय छिन्न भिन्न हो गया है । उहाँ पर नारायण की करुणामय मूर्ति आभिभूत हुई । पाताल निर्मल तेज से प्रकाशित हो गया । उन्होंने मुझे सजीवनी मुग्धा देकर एक देवी की गोद में बैठा दिया । क्या तू उसी स्वप्न की देवी है ? यह पुण्यभूमि कौन की है ? यह स्वप्न राज्य है अथवा देव राज्य ?’

शैलजा ने कहा—“बेटा ! तुम शिविर में हो ?”

“शिविर में ! कहाँ के शिविर में ?”

‘कुरुक्षेत्र के शिविर में ।’

यह सुन कर उत्तरा क्षण भर टकटकी लगाए देखती रही । कृष्ण पक्ष के अन्धकार में जिस तरह क्षीण हुए चन्द्रमा की कोर दिखाई देती है उसी प्रकार उत्तरा के मन में धीरे धीरे पीछे की बातों का स्मरण होने लगा । पितृगृह, नाट्यालय, बृहन्नला, उत्तर गोमहालय समय की जय, विवाह, छ महीने तक भोग किया हुआ सुख स्वप्न, कुरुक्षेत्र का महा रण, उहाँ का शिविर, चक्रव्यूह, मृत पति के दर्शन और परचात अन्धकार—

हिन्दी गद्य वाटिका

बालक का सिंहासन पर बिठाऊँगी और तुम मरी राज्य-लक्ष्मी होगी। बालक का मुख देख कर, प्रजा का सुखी जान कर तुम्हारा दुःख दूर होगा।'

उत्तम ने एक लम्बा साँस ली और कहा—'सूर्य धरतल जाने पश्चात् क्या दिन राकी रहेगा ? चन्द्रमा के चले जाने पर क्या चातनी रह सकती है ? वृक्ष के भग्न होने पर उसकी छाया बनी रह सकती है ? जलाशय के सुख जाने पर क्या नलिनी बहा बनी रह सकती है ? कुरुक्षेत्र रूपी रादल में उत्तरा का आश्रयभूत वृक्ष उखड गया है—फिर इस तता की पीछे क्या दशा होगी ? मुझे इस समय तुम इतना ही आशीर्वाद दो कि उसका फल माता सुभद्रा, सुलाचना और शैलजा इन को स्वाधीन करके मैं अपने वृक्ष के पाद मूल के समीप अपना प्राण समर्पण करूँ।'

कुछ देर तक रतन्त्र रह कर उत्तरा ने फिर कहा—'इस कुरुक्षेत्र में मुझ सरीखी कितनी ही अनरात्रों का भाग्य फूटेगा, यह कहा नहीं जा सकता।'

'युद्ध समाप्त हो गया।'

'समाप्त !' उत्तरा आश्चर्य पूर्वक पूछने लगी।

शैलजा ने कहा—'हाँ, समाप्त हो गया। जगत की महा ज्वालना शान्त होगई। क्षत्रिय वन को भग्न करके अधर्मरूपी

पचा लिया तो फिर उठे माटे गिया ही क्या गणना ? फिर उत्तरा ने पूछा—तो क्या उत्तरा के मरे के सब लोग गट होगए ? क्या हमारा पापा, दादा सब मुझ अभागिनी को अकेला छोड़ कर चले गए ? मर जोग चले गए परन्तु मेरा हृदय पिढागं न हुआ । ह दिन तक मैं मूर्च्छित—बेहोश—पड़ी रही, परन्तु ता भी मर प्राण न निकले !

शैलजा ने कहा—‘बत्स ! तुम्हारे जीन की किससे आशा थी ? परन्तु कृष्ण ने याग कर होकर तुम्हें पुनजन्म दिया ।’

‘दयामय कृष्ण न इस अनार—सूखी हुई लता को—क्यों बचाया ? अग्नि से क्या न ज्वाला दिया ?’

‘बत्स ! तू कुम्भज की लक्ष्मी है । कुम्भज का आधार हान वाला परमात्र अकूर तरे गर्भ में है । तेरा पुत्र मनुष्य मात्र का आशात्रक्ष और धर्मराज्य का आधार-स्तम्भ होगा और तू मर्या धामराज्य लक्ष्मी होगी ।’

‘क्या मरे पाँचों देवर कुशजपूरक हैं ?’

शैलजा ने उत्तर दिया—‘पाण्डव, सात्यकी और कृष्ण इनके सिवाय और कोई नहीं उचा । द्राण पुत्र ने रात्रि समय शिविर में प्रवेश करके मोते हुए पाँचों बालका का वध किया । अधर्म का अन्तिम अरु कल रात्रि को पूर्ण हुआ । अब खेल समाप्त हो गया । इस अधम राक्षसी से जोगी की रक्षा हो,

आकाश में दिग्बाहू नहीं पड़ता था। १ मालूम सारे नक्षत्र, शोक से व्याकुल हो कर, पृथ्वी पर गिर पड़े, गरज गड़गड़ी गायत हा गण। मिर के शान खुते हुण, आकाश में व्याकुल, गीर नारी मृत पति, पुत्र, पिता अथवा अनुग्रहा जो वहाँ दूँड रही थीं। शकुनी और शृगात्र रात्रि के समय उस समझान में इधर उधर धीरे धीरे घूमते और अपना कश शत्रु द्वारा रात्रि की शान्ति का नाश करते थे। उस समय उत्तरा का हृदय काप उठा। शोक में व्याकुल हो कर वह शैलजा के गल में त्रिपट गइ, और उससे वक्षस्थल पर मुख रख कर बोली—‘जिस प्रकार ये चिताएँ धीरे धीरे जल कर शान्त हो रही हैं क्या उम्मी प्रकार मेरे हृदय में जलने वाली चिता भी शान्त हो जायगी? क्या इसी प्रकार कभी मेरे आकाश की रात्रि भी समाप्त होगी?’

शैलजा ने कहा—‘देखो भारत माता के वक्षस्थल पर, असंख्य चिताएँ जल रही हैं। इस चितानल में, अधर्म जल कर भरम हुआ जाता है और नवीन धर्म की बाल किरणों का प्रकाश धीरे धीरे हो रहा है। जगत् के प्राणियों, तुम्हारे और मेरे प्राणों को आनन्दित करने के लिए कृष्ण नाम की ध्वनि हुआ ही चाहती है।’

शैलजा उत्तरा को धीरे धीरे पति की चिता के समीप ले गई। यह चिता हिरण्यवती नदी के किनारे एक अशोक वृक्ष

हिन्दी-गद्य वाटिका

के बिना कँसी हा रही हैं, क्या इसकी तुम्हें कुछ खबर है ? एक बार उसे अपने हृदय से लगा तो और एक शब्द गोल कर उसे सुखी करो। तुमन पृथ्वी पर उत्तरा के साथ छ महीने रह कर जा उन स्वर्ग के समान सुख पहुँचाया और अब उसका हृदय त्रिदीर्घ करके इस प्रकार चलते हुए ! तुम अपने प्रेम की कृती इस जता में संचारित करके किस प्रकार चले गए ? खैर ! छ महीने के लिए मुझे क्षमा करो। छ महीने बाद उस फल को प्रमत्त कर, पृथ्वी पर तुम्हारा प्रतिविम्ब स्थापित करके, यह उत्तरा, जिसे यह छ महीने छ युग के समान व्यतीत होंगे, तुम्हारे समीप आयेगी। पति की चिन्ता पर मृत प्राण समर्पण करना, यह मृत्यु नहीं है। नाथ ! मुझे आशीर्वाद दो कि यह मृत्यु व्रत मैं अच्छी तरह पूरा कर सकूँ !”

शैलजा ने चिन्ता भ्रम अपने और उत्तरा दोनों के माथे पर लगा कर कहा—‘वत्स ! उन माता का व्रत मुझ से पूर्ण हो, ऐसा मुझे आशीर्वाद दो। इसके बाद दोनों ने उस चिन्ता के चारों ओर प्रदक्षिणा की और अपना कवेजा पत्थर का करक शिपिर को बापस गइ। कृष्ण अब तक पापाण मूर्ति के समान उसी अशोक वृक्ष के नीचे ज्या के त्या खड़े रहे। तब तक अर्जुन सुभद्रा को लेकर चिन्ता के पास आए। उस समय अर्जुन शोक से व्याकुल थे। परन्तु सुभद्रा के मुख पर शान्ति की छाया झलकती थी। शोक का अपार सागर उस

मनुष्य की मुक्ति का मार्ग रक्त के सागर से है तो है देव, पर
 धरतल से पर निमित्त काग में कृष्ण के रक्त से पृथ्वी का धान
 क्यों न कराया ? एक ममज्ञान प्रज्वलित करके कृष्ण के हृदय
 को वहा क्यों न समर्पण किया ? आज अठारह दिन तक जा
 रक्त का प्रवाह रहा, उसमें का प्रत्येक त्रिन्दु कृष्ण के तप्त रक्त
 में निम्नता हुआ था । इन हर एक चिन्ताओं में कृष्ण का प्राण
 भरम हुआ है । प्रत्येक अनाथ स्त्री का हाहाकार का शब्द,
 मां गरी का शोक, उत्तरा की शास्त्रमय मूर्ति, अर्जुन का दुःख
 धम, सुभद्रा का वैराग्य इत्यादि बातों ने मेरे हृदय पर घना
 पात किया है । राज सूय-यज्ञ द्वारा निमाण किया हुआ उस
 राज्य, गालू की भीत का समान जय नष्ट हान तथा तभी मैंने
 यह समझ लिया था कि रक्तचाप हुए बिना, अग्नि में परीक्षा
 हुए बिना, पृथ्वी पर उस राज्य की स्थापना नहीं हो सकती ।
 नारायण ! तुम्हारी यह इच्छा जान कर, मैंने अपना हृदय
 विदीर्ण करके अठारह दिन तक पृथ्वी पर रक्त की नदी गहाई !
 इतना करने पर भी प्राणों सभी अदिक प्रिय कुमार की
 आहुति देनी पड़ी । निष्पाप मानव पुत्र को अपने प्राणों की
 प्रति देने के सिवाय क्या मानव जाति का उद्धार नहीं हो
 सकता ? यदि आप की यही इच्छा है, तो मैं शोक को परि-
 त्याग करता हूँ । आप के इच्छानुसार सब कार्य हीना
 चाहिये । अब आप पृथ्वी पर धर्म राज्य की स्थापना कीजिए ।'

हिन्दी गद्य साहित्य

हम । उनके पास गद्य किताबें अनजय खड़े थे । श्रीर दाना के बीच में सुभद्रा देवी । प्रेमानन्द म मग्न हास्तर अपनी देह की सुध बुध भुगा कर, व्यास न कहा — 'हे दयगण ! अग्निगण ! गद्य गार यहाँ आकर इन पार्थिव श्रिमूर्ति के दृशन करो । ज्ञान का कृ ण, अनजय वलदय, और उनका मध्य में भक्ति देवी सभद्रा शोभायमान हैं । उनका सामने चिन्ता-रूपी आत्म विमर्जन हो रहा है । ज्ञान, यत्न, आत्मविमर्जन ये भक्ति के निष्काम मंत्र द्वारा परस्परिण हूण है । यही मानव जाति के लिए माक्षधाम है । यही छापक का अन्तार है । यह महातीर्थ आँसु भर कर आज मैंने देखा । मरा मारुथ पूरा हुआ । नारायण ! आप महाभारत का गीत गान की मुझे शक्ति दें, जिससे मनुष्य, उस गीत का सुन कर और कृ ण नामामृत का पान करके, मुक्ति लाभ कर, और जिसको पढ़ कर पृथ्वी रयगधाम बने ।'

शैलजा न गुरुदेव की पदरज अपने सिर पर धारण की और कहा— 'हे गुरुदेव ! तुम्हारी कृपा से, हे पुत्र ! पुम्हार स्नन्द से, इस तेरी अनाथ माना का आज जन्म सफल हुआ ! हे नागायण, अग्र्य और अनाथ दोनों के रक्षक, पति अनाथों को अपने पद कमल में शरण दो ! तुम्हारे धर्म-राज्य में उनको भी स्थान प्राप्त हो ! हे भगवान्, भारतवासियों को ज्ञान, भक्ति, यत्न और आत्म विसर्जन करने की शिक्षा दो, जिसके कारण वे पशु से मनुष्य कहलाए योग्य बनें ।' — "श्री कृ ण चरित" सं ।

क अन्युच्च शिखर पर विराजमान है। ज्ञान विज्ञान तथा कला
 कौशलमें जो उन्नति इस देश ने की है वह कबल विस्मयान्वा
 वर है। पणार्थ विद्या में यदि कहीं नित्य नए आविष्कार
 होते हैं तो यह इसी देश में। माहितियत्र अनुसन्धान तथा
 दृग्गनानुशीलन के लिए जर्मनी का विद्वज्जन समुदाय सबल
 सत्कार में प्रसिद्ध है। निपुणता और शायदक्षता उन का आदर्श
 वाक्य है। जिस काम को भी वे हाथ में लेते हैं पूरा किए
 बिना नहीं छाड़ते। सारांश यह कि आज इस देश की अस्तित्वा
 को दख कर मनु भगवान् का यह कथन याद आता है—

एतद्देश प्रमूतस्य सक्ताशावन्नजन्मन ।

स्वस्य चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्या सर्वमानस ॥

किन्तु यही देश जो आज सूर्य के समान चमक रहा है
 आज से प्रायः दो सौ वर्ष पूर्व कुछ भी न था। यह बल, परा
 क्रम और तेज जिम के कारण आज बड़े बड़े राष्ट्र इस से भय
 भीत रहते हैं, पारस्परिक मेल के न रहने के कारण, मिट्टी में
 मिला हुआ था। शास्त्र विवेचन का तो कहना ही क्या, दो सौ
 वर्ष पूर्व जर्मन देश की एक भाषा भी न थी। अथवा यदि कहिए
 कि कोई भाषा थी ही नहीं। फ्रेंच भाषा का सीखना ही गौर
 वास्पद समझा जाता था। वरन् सम्य सम्राज में तो फ्रांसीसी
 भाषा का ही व्यवहार होता था। फ्रेंच कवियों की
 कविताओं का ही जर्मनी में प्रचार होता था। सच

बैठा। इस के मन में राजा कहलाने की उत्कट लालसा उत्पन्न हुई। और इसी उत्कण्ठा से वह प्रयत्न भी करने लगा। किन्तु 'राजा' पद की उपलब्धि केवल सम्राट से ही हो सकती थी, और सम्राट पोप का अनुयायी तथा फ्रेडरिक का धर्म विगर्ही था। इस लिए वह काम कुछ कठिन था। देव योग से सम्राट को एक घोर संग्राम के लिए सहायता की आवश्यकता पड़ी और उसने फ्रेडरिक को प्रयत्न करना जरूरी समझा। अतएव सन् १७०१ में फ्रेडरिक की मनोकामना पूर्ण हुई और एक महोत्सव में 'राजा' की उपाधि फ्रेडरिक को प्रदान की गई।

सन् १७१३ में महाराज फ्रेडरिक का पुत्र पहला विलियम गद्दी पर बैठा। इमनी प्रकृति बड़ी ही विचित्र थी। आज हम उसी के विषय में कुछ वर्णन करेंगे।

विलियम एक विचित्र पुरुष था। शरीर में बहुत ही मजबूत परन्तु बुद्धि में अकखड जाट। धीरता तथा गम्भीरता थी तो उस में गद्य मात्र भी न थी। सम्यता, रुचिता, सौन्दर्य, शिल्प और शिक्षा का वह कट्टर विरोधी था। उसका कथन था कि थोड़ी सी भी सामान्य बुद्धि महाविद्यालयों से कहीं बढ़ कर है। इस पर भी वह ऐसे समय में सिंहासन पर बैठा जब कि देश को उसकी बड़ी आवश्यकता थी।

उसका पिता विद्यालय बनाता, प्रजा को शिक्षा देने का

हिन्दी-गद्य-याटिका

उसके हाथ में एक लम्बी सी छड़ी थी। उसी छड़ी में उसने पुत्र की मूर्त रखर ली। इसी छड़ी को लेकर वह नगर में भ्रमण किया करता था। यदि कोई पुरुष या स्त्री बिना कुछ काम करत हुए उसका दृष्टिगोचर होते तो वह तीन चार छड़ी लगा देता और कहता—'काम पर जाया'।

उसने एक सभा बनाई थी जिस का नाम पीछे में 'तमाकू सभा' पड़ गया। इस सभा में राज्य विषयों बहुत गम्भीर विचार होते थे। किन्तु इसमें किसी ऐसे पुरुष को बैठने का अधिकार न था जो तमाकू न पीता हो। इस लिए बजौर आदि सब राजपुरुषों को अशुभ ही चुरट पीना पड़ता था। पाठक, जरा सोचिए तो सही। धुएँ की लपेटों के बीच राजनीति तथा प्रजा सम्बन्धी गूढ़ विषयों पर विचार करने का इस से सुन्दर दृश्य क्या और सही दृष्टिगोचर होगा।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, तमाकू सभा में प्रत्येक अमीर वजीर को तमाकू पीना पड़ता था। इसी प्रकार तमाकू के साथ बीयर (Beer) भी उन्हें पीनी होती थी। इन बातों से पाठक जान सकते हैं कि विलियम कैसा विचित्र मनुष्य था। यद्यपि उसका स्वभाव विलक्षण तथा जोकाचार के विरुद्ध था तथापि वही मनुष्य प्रशिया के एवं जर्मनी के महत्त्व और गौरव का सच्चा सस्थापक था। ऐसा क्योंकर हुआ, यह नीचे वर्णन किया जाता है।

हिन्दी गद्य वादिना

जो, जो लम्बे आदमियों की तलाश में उस देश में गये थे, फाँसी दे दी। इस के कुछ दिन बाद उस ने विलियम को लिखा कि आपके विद्यालय में एक विद्वान् आचार्य हैं। कुछ काल विलियम उसकी हसं आश्चर्यकता हैं। आप कृपा कर उन्हें भेज दीजिए। विलियम ने उत्तर दिया—नो टॉल मैन, नो प्रोफेसर, अर्थात् न कोई लम्बा मनुष्य आप के यहाँ से मिला, न जोड़ अध्यापक यहाँ से जावेगा। इस प्रकार चौबोस सौ लम्बे मनुष्यों की एक बड़ी सेना उसने तैयार की। उस सेना की रक्षा वह पितारत करता था। इस सेना को Potsdam giants अर्थात् रावण की सेना कहते थे। यही शारीरिक बल था जिस को विलियम के पुत्र फ्रेडरिक ने लेकर सारे योरोप के मुक़ाबले में विजय प्राप्त की और अपना तथा अपनी जाति का नाम उज्ज्वल किया।

विलियम में, यदि वर्तमान समय के आचार-शास्त्र के अनुसार, बहुत से दोष थे तो साथ ही दो बड़े गुण भी थे। एक तो वह आलस्य का द्वेषी था। प्रत्येक को काम करता हुआ देख कर ही वह प्रसन्न होता था और इसी प्रकार जिस काम में करता था उसको यही दृढता से पूर्ण करके ही छोड़ता था। ससार की निन्दा तथा प्रशंसा की उसे कुछ भी परवा न थी। उसने राज्य के प्रत्येक भाग से सकल शिथिल भावों को निकाल कर दृढनास्थापित की थी। सेना को तो उसने बहुत ही

४५

त्रिमूर्ति

लेखक—श्रीयुत पदुमलाल पुन्नालाल चरझी

[इस लेख के लेखक श्रीयुत पदुमलाल पुन्नालाल चरझी, वी०७० अपने कृत्रिम 'नवीनचन्द्र' नाम से भी लिखते रहे हैं। आप मध्य प्रदेश के रायपुर जिले के अन्नगंत रंगपुर रनवाडे के निवासी हैं। आप बहुत अच्छे लेखक समालोचक तथा कवि हैं। श्रीयुत द्विवेदी जी के बाद आप कई वर्ष तक प्रयाग की सरस्वती का सफलता पूर्वक संपादन करते रहे हैं। आज कल आप राजनौद गाँव के स्टेट स्कूल में अध्यापन का कार्य करते हैं। आपकी प्रसिद्ध पुस्तकें ये हैं—हिन्दी साहित्य विमर्श, विश्व साहित्य और पंच पात्र।]

सौम्य और मधुर रहना है। परन्तु जीवन के मध्याह्न काल में हमारे लिए प्रकृति का सौन्दर्य नष्ट हो जाना है। संसार के अनन्त शायों में निरन होकर हम केवल विश्व के विषम सताप का अनुभव करने हैं। सब कुछ वही रहता है, हमें दूसरे हो जात है। पहल वर्षा-काल में कीचड़ का कुछ भी खयाल न कर हम आशा के नीचे पृथ्वी के वक्ष रजल पर विहार करते थे। जब जल के छोटे छोटे छानत कल उल करते, हँसते, नाचते, प्रिरकते, उहते जाते थे, तब हम भी उन्हीं के साथ खेलते, वृद्धते, दौड़ते थे। परन्तु गर्भ्य होने पर हमें घषा में कीचड़ और गँदलेपन का दरय दिग्ग्राह दता है और हम अपने संसार में नहीं भूतते। वाल्मीकि और तुलसीदास के वर्षा वर्णन में हम यह बात स्पष्ट देख सकते हैं। दोनों विरघात कथि हैं, दोनों न एक ही विषय का वर्णन किया है। परन्तु जहाँ वाल्मीकि के वर्णन में हम प्रकृति का यथार्थ रूप देखते हैं, वहाँ तुलसीदास के वर्णन में हम संसार की कुदिलता का परिचय पाते हैं। इसका कारण यही है कि वाल्मीकि ने तपोवन में कविता लिखी थी और तुलसीदास ने काशी में अथवा अन्य किसी नगर में।

कवि पर दश-काल का यही प्रभाव पडता है। यह प्रभाव कवि की कल्पना गति में बाधक नहीं होता तो भी इस में सन्देह नहीं कि उसके कारण कवि की कल्पना पर निर्दिष्ट पथ पर विचरण करती है। होमर सीता की कल्पना

पृथ्वी मनुपूण हो जाती है। उस समय हमें जान लेना चाहिए कि हम वाल्मीकि, व्यास और होमर के सत्ययुग में पहुँच गये हैं।

काव्य दो भागों में विभक्त किये जा सकते हैं। कुछ काव्य पद्य होते हैं जो कवि के व्यक्तित्व से पृथक् नहीं किए जा सकते। उनमें कवि ही की आत्मा छिपी रहती है। ऐसे काव्यों में कवि अपनी प्रतिभा के बल से अपने जीवन के अनुभवों की के द्वारा समस्त मानव-जाति के चिरन्तन गूढ भावों का व्यक्त कर देता है। परन्तु कुछ काव्य ऐसे होते हैं जिनमें विश्वात्मा सचरण करती है। वे देश और काल से अनवच्छिन्न रहते हैं। ऐसे ही काव्यों को महाकाव्य कहते हैं और उनकी रचना वही करती हैं जो विश्व कवि कहलाते हैं, जो समग्र देश और समग्र युग के भावों को प्रकट कर अपनी कृति को मानव जाति का जीवन धन बना जाते हैं। गिरिराज हिमालय के सदृश वे पृथ्वी को भेद कर आकाश-मण्डल को छूते हैं। उन पर काल का प्रभाव नहीं पड़ता। वे सदा अटल पने रहते हैं और उनकी कविता जादवी अनिश्चित काल तक लोगों को पुनीत करती रहती है। भारतवर्ष में रामायण और महाभारत इसी प्रकार के महाकाव्य हैं। प्रचीन ग्रीस के इलियड और ओडेसी उसी के समकक्ष महाकाव्य हैं। भारतवर्ष में जो स्थान वाल्मीकि और व्यास का है, योरोप में

हिन्दी गद्य गति

हाता है कि ये क्रिपदन्तियों कवियों की कृतियाँ पर सर्व
 मायारण की आवाचनाएँ हैं। कविता की उत्पत्ति कैसे होती
 है, यह इस घटना के द्वारा उतलाया गया है। इस मृत्युकार
 में जीवन और मृत्यु की जो तीजा हो रही है, मनुष्यों के हास्य
 में भी कल्याण वेदना की जो धरनि उठ रही है, क्षणिक सयाम
 के बाद अनन्त वियोग की जो निदारुण निशा आती है, उमो
 से ममाहत होकर कवि के हृदय में सहसा जा उद्गार निकल
 पडता है, यही कविता है। जिस कविता में वेदना का स्वर
 नहीं, वह कविता माधुर्य से हीन है। शैली ने इसी भाव को
 निम्नलिखित पद्य में व्यक्त किया है—

Our sweetest songs are those,
 That tell of saddest thoughts,

व्यासदेव ने हिन्दू समाज को धर्म और नीति की शिक्षा
 दी है। उनके महाभारत में ही हिन्दू-महाचार की सृष्टि हुई
 है। इसी लिए उस का पञ्चम वेद कहते हैं। परन्तु धर्म और
 ज्ञान की सूक्ष्म विवेचना करने वाले व्यास जी का जन्म वृत्तान्त
 ऐसा नहीं है कि उसे प्रकट करने के लिए लोग लालायित
 हा। क्या उनके जीवन से यह सिद्ध नहीं होता कि जन्म किसी
 मनुष्य का भविष्य निश्चित नहा कर देता। हमारे अन्धा
 था। 'हामर' शब्द का अर्थ ही अन्धा है। इसी प्रकार हमारे
 सूरदास भी अन्धे थे। जो जगत् के वाह्यरूप की अवहेलना

हिन्दी गद्य-वाटिका

कुछ लोगो को उसकी तथा अस्वाभाविक प्रतीत होती है। परन्तु यह उन का भ्रम है। रामायण से यही सिद्ध होता है कि मानव-समाज किस प्रकार आदर्श रूप में परिणत हो सकता है, पृथ्वी स्वर्ग जैसे हो सकती है। शरद्विन्दु बाबू की राय है कि रामायण में एक विशुद्ध नैतिक अवरथा का चित्र पाया जाता है। उसमें शारीरिक और मानसिक दोनों शक्तियों का पूर्ण विकास दिखाया गया है। साथ ही साथ इन शक्तियों का न्यभाष की शुद्धता और श्रेष्ठ धार्मिक जीवन के कार्यों की सहायक प्रान की भी आवश्यकता बतलाइ गई है।

व्यास जी ने महाभारत में पार्थिव शक्ति की पराकाष्ठा दिखाकर उसकी निस्सारता दिखाइ है। उन्हें न कतव्या कतन्य और धमात्म का उडा ही सूक्ष्म निणय किया है। स्वर्ग में सुविष्टर का यह देख कर बडा आश्चर्य हुआ कि उनके धर्मात्मा भाइयों का तो वहाँ पता नहीं, पर अधार्मिक दुर्बोधन स्वर्ग की विभूति का उपभोग कर रहा है। बात यह है कि अपने कतव्य क्षेत्र में बलि हा जाना, यही धर्म की पराफाष्ठा है।

हामरके दा काय प्रसिद्ध हैं। एक का नाम इलियड है और दूसरे का नाम ओडेसी। ईणियड में प्राचीन ग्रीस के इतिहास में प्रसिद्ध 'ट्रोजन वार' नामक युद्ध का सविस्तर वर्णन है। प्राचीन काल में ट्रोजन एशिया में एक समृद्धिशाली राज्य था।

श्री इश्वर-पद प्राप्त है। उन का नाम मात्र स्मरण करके नीचे
 मनुष्य भर सागर का पार कर जाता है। मनुष्यों की यह
 भक्त भावना उनका अलौकिक चरित्र के कारण नहीं है, किन्तु
 उनके नीचिष्ठ चरित्र के कारण है। उनकी विशाल महिमा से
 आतङ्क उत्पन्न हो सकता है, प्रेम की उत्पत्ति नहीं हो सकती।
 रामचन्द्र इश्वर थे, पर आये थे वे मनुष्य ही के रूप में। उनमें
 मनुष्याचित गुण थे। वे पुत्र थे, भ्राता थे, स्वामी थे। उनका ने
 मनुष्यों के सुख दुःख और आशा निराशा का अनुभव किया
 था। जो राज राजेश्वर है, वह दरिद्र की कुटी का अनुभव नहीं
 कर सकता। परन्तु रामचन्द्र ने दरिद्रव्रत भी धारण किया
 था, राज सिंहासन से नीचे उतर कर दरिद्रता को अजिह्वन
 किया था, एकल वस्त्र पहन कर जङ्गल जङ्गल घूमे थे। तभी
 तो अधर्मियों को उनके पास जाने का साहस होता है।
 तुलसीदास जी ने रामचन्द्र के चरित्र में उनकी ईश्वरीय शक्ति
 का शर शर स्मरण कराया है। इसकी कोई आशंका नहीं
 थी। सब पूछा तो इसमें रामचरित मानस में उडा दोष आगया
है। सीता की वियोग व्यथा से पीडित होकर रामचन्द्र जी ने
जो विलापोद्गार किये हैं, उन्हें पढ़ कर दृश्य द्रवीभूत हो जाता
है। मन्भव नहीं कि जो पाठक उन गथना को पढ़ कर—जहाँ
तुलसीदास जी ने स्वर्ण रस का स्रोत उदा दिया है—आम्
न बढाये। परन्तु येने म्थानां म तुलसीदास जी हठात् कह

हिन्दी गद्य वाटिका

तब तक उनके हृदय से रामायण का प्रभाव दूर न हो सका।

मानव जाति एक ही है तो भी दश गौर काल के व्यवधान में यह अनन्य खण्डों में विभक्त हो गई है। घम के ममान साहित्य का भी यही एक उद्देश्य है कि वह मनुष्यों को एक दूसरे से पृथक् रखने वाले इस व्यवधान को उठा दे। यदि यह अभी सम्भव हो जाय, तो हम पृथ्वी पर सौन्दर्य का यथावत् रूप देखें। परन्तु भिन्नता दूर होना न स्यात् में उठ ही रही है।

वार्मिन् क्षेत्र में जब कभी किसी महात्मा ने मानव जाति को एक करने की चेष्टा की, तब न केवल उसकी चेष्टा व्यर्थ हुई, बल्कि उस में ससार में भेद भाव की सत्त्वा उठाने वाले एक और नए पन्थ की सृष्टि हो गई। सन्तान में जितने मत प्रचलित हैं, उन सब का प्रारम्भ इसी उद्देश्य से हुआ था। तो भी हम देखते हैं कि उन्हीं में ससार में पारस्परिक विद्वेष और घृणा के भाव फैले हैं। परन्तु साहित्य के क्षेत्र में यह हाल नहीं है। यहाँ किसी महान् आत्मा का अभ्युदय होने पर विद्वेष और घृणा के स्थान में प्रेम और सहानुभूति के भाव जाग्रत होते हैं। सभी तोग परस्पर मिलते जुलते, दैते-लैते हैं और इस प्रकार अपना जातिव्य छोड़ कर मनुष्यत्व ग्रहण करते हैं। साहित्य में आदान प्रदान का यह काय बड़ी शान्ति में होता है। किसी की दृष्टि भी उस पर नहीं जाती। भाव ने योरुप को कितना दिया और उस से कितना लिया, इस

४६

हेनरी फेवर

प्रकृति का राज्य रहस्यपूर्ण है। जो उसमें विचरण करता है वह प्रकृति की विलक्षणता में मुग्ध हो जाता है। कहीं पहाड़ों की शृङ्गमाला है, तो कहीं विरलत घन भूमि है। कहीं अनन्त जल सागर है, तो कहीं तप्त गलुकामय रेगिस्तान है। प्रकृति के कौतुक, उसकी क्षुद्रातिक्षुद्र लीलाएँ हमें आश्चर्य-सागर में डाल देती हैं। सच तो यह है कि उसकी सभी गतें विम्बयोत्पादक हैं, सभी याद्दादायिनी हैं।

प्रकृति के इसी राज्य में हमारे चरितनायक हेनरी फेवर के जीवन का अचिकाश व्यतीत हुआ है। प्राणिशास्त्र के

हिन्दी गद्य-याटिका

कीड़े मगोड़े तथा पूज पत्ते उनके मारपी थे। रोज की ऐसी ध्यानन्दायिनी सामग्री क मारण उनको बाल्याश्रया में टु ख म किञ्चिन्मात्र भी अनुभव नहीं हुआ।

मात्र मप की शरया में क पाठशाला में पढने के लिए भेजे गय। उनका शिक्षक एक नाश था। यह अपन ध्यवसाय के अतिरिक्त गिरजा घर में घण्टा बजाने का भी काम करता था। फिर भी यह गडरों को पढाने के लिए समय बचा लेता था। अपन परिवार क साथ यह स्कूल में ही रहता था। उसके जानवरों के कारण विद्यार्थियों को अपनी पढाइ में गहुया गधा पहुँचती थी। जाड़े क दिनों में प्रत्येक विद्यार्थी म खुद आग जलाय क लिए जङ्गल से लकड़ियाँ चुन लानी पडती थी। यद्यपि स्कूल की ऐसी दीन दशा थी, तो भी उसके शिक्षक न अपन भरसक पैसा प्रयत्न किया कि उसके विद्यार्थियों म विद्या क प्रति अनुराग जाग्रत हो गया। उसका उपकार हनरी अपन जीवन भर मानते रहे।

अकाल के कारण हनरी के पिता को रोडेज नगर में नौकरी करनी पडी। वहाँ हनरी को पाठशाला में पढने का फिर अवसर मिला। इतने दिनों की ही पढाइ में उन्हें महाकवि बर्जिल के ग्रन्थ समझने की योग्यता हो गई। परन्तु इसी बीच म उन्हें अपनी जीविता के निर्वाह की चिन्ता हुई। वे उस समय सिर्फ सोलह वर्ष के थे। काम सीखने के लिए समय न

मन में नड नड गतें उत्पन्न होनी लगी। उन का अवकाश का समय पूरा, घाघे और कीट-पतङ्ग एकत्र करने में बीता करता था। वहाँ एक प्राफेसर से उनकी मित्रता हो गई। वे भी गणित शास्त्र और प्राणिशास्त्र के प्रेमी थे। एक दिन भोजन करते समय उन्हें एक फेर सा घोंघे के सम्बन्ध की कुछ अनोखी बातें बताई। बातें उन्हें ने घोंघा को चीर फाड़ करके खोज निकाली थी। इसमें फेर को एक नया ही तरीका मालूम हुआ। भिन्न भिन्न प्रकार के प्राणियों को एकत्र करने और उन के बाह्य शरीर की रचना पर विचार करने के सिवा वे अब शरत्र द्वारा चीर फाड़ करके पूजा और कीड़े-मकाड़ा की जांच करने लगे।

इस विषय में फेर साहब की ज्ञान जिप्सा इतनी बढ़ी कि वे दिन रात परिश्रम करने लगे। इसमें उनका स्वास्थ्य बिगड़ चला और उन्हें अपनी बदली करानी पड़ी। अब की बार वे फ्रांस के पद्विगनोन गाँव की पाठशाला में अध्यापक हुए। वहाँ भी वे अपनी शिष्य मण्डली के साथ बाहर खेतों में घूमा फिरा करते थे।

स्कूल में कामा में फँसे रहने के कारण फेर साहब को प्राकृतिक विज्ञान का अध्ययन करने के लिए कम अवकाश मिलता था। उनकी यह बड़ी इच्छा थी कि वे किसी विश्वविद्यालय में अध्यापक हो जायँ जिससे उन्हें पशु पक्षियों और पौधों के सम्बन्ध में शिक्षा देने का अवसर मिले। यदि वे अपने निश्चय

क्याकि रूँया अपन छत्ते में जितने गुपरीने पक्क करती है, वे प्रकृत काल तक वहाँ कैद रहने पर भी मरत नहीं। हाँ उनकी चतन फिरने की शक्ति जम्बर नष्ट हो जाती है, जिससे मादी रूँया के अण्डों से प्रज्ञे निकलने तक वे जीवित रहें और बच्चा को यथा समय ताजा भाजन मिल सक। क्या मृत, रूँया भी रडी अग्रशोर्नी निरली।

केर साहब न अपनी इस खान को पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया। उनकी यह पुस्तक इतनी रोचक, मरत और मौलिक निकली कि सब वैज्ञानिक इस ग्रामीण पाठशाळा के अध्यापक की असाधारण बुद्धि पर मुग्ध हो गए। डार्विन तर्क ने इस पुस्तक की प्रशंसा की। उन्हें इस पुस्तक के बदले में पारितोषिक तो कम मिला, परन्तु वैज्ञानिकों की उदार आलोचनाओं से वे विशेष रूप से उत्साहित हुए।

यदि केर साहब की अपनी जीविका की चिन्ता न होती और यदि वे केवल प्रकृति विज्ञान के अध्ययन में ही सतत रहते तो सम्भव था कि वे मरसार में कोई बड़ा काम कर दिखाते। दासत्व के बन्धन से मुक्त होने के लिये उन्होंने उद्योग तो किया, परन्तु अपन भोले भाले स्वभाव के कारण चूक गये। उन्होंने मज्जीठ की जड़ में रङ्ग बनाने का सुगम उपाय खोज निकाला। पर वे उसे गुप्त न रख सके। दूसरे लोगों ने उसे जान कर वास्तव में उठाया और वे मुँह ताकते रह गये। उनके इस आविष्कार

उन्हे मिया पाठशालोपयोगी पुस्तक की गायतली मिलना भी
 उम्मीद थी। इस सङ्कट में फर ने जान मिल की मदद
 चाही। उदारचरिता मित्त ने उनकी प्रार्थना रसीमार कर ली
 और मिया दम्नारण ने उन्हें एक अच्छी रकम दे दी।

फर का जीवन भर कठिन परिश्रम करना पड़ा। उन्होंने
 मित्त साहब से सब रूपण ग्रहण कर लिए, परन्तु आजन्म उनका
 उपहार मानते रहे। इस के बाद एकान्त में रहने की इच्छा से
 वे मेरिमान की शान्ति कुटीर में चले गए और तीन वर्ष के
 बाद वहीं से उन्होंने एक ग्रन्थ प्रकाशित किया। उसकी
 अच्छी कृति हुई। इस के बाद उन्होंने 'नि सार भूमि-खण्ड'
 नामक एक पुस्तक लिखी। उसमें उन्होंने अपने रीति-रिवाज के कठिन
 पतन का जीवन वृत्तान्त लिखा। उसमें कीड़ा के भ्रमन्वय में
 ऐसी ऐसी बातें बताई गई हैं जिन्हें मनुष्य पहले न जानते थे।
 कुछ प्राणियों के प्रति अगाध प्रेम होने के कारण उनकी छाटी
 छोटो और तुच्छ बातें भी उन्हें आनन्दप्रद थीं। एक स्थान पर
 वे लिखते हैं कि ये तुच्छ जीव अपनी सहजबुद्धि से विलक्षण
 काम करते हैं। पता कोड़ मनुष्य न होगा जा मकड़ी के जाले
 को देख कर उसकी कारीगरी की प्रशंसा न करे। परन्तु
 आश्चर्य है कि जिस मकड़ी में जात्रा बनाने की योग्यता है
 उसमें उसको सुधारने की शक्ति नहीं। जान पड़ता है कि फेर
 महाशय मकड़ी की बुद्धि और असमर्थता का यह अद्भुत मज

जिम्ही है। महत्त्वपूर्ण हानि के कारण उनकी सभी पुस्तकें
आवरणीय हुई।

फेरर कृष्ण 'विचित्र देश की गाथा' नामक पुस्तक अत्यन्त रोचक
और शिक्षाप्रद है। उसमें जीव जन्तुओं की लीला, उनकी काय
कुशलता और बुद्धिमत्ता बड़ी योग्यता से, निरीक्षण करके, लिखी
गई है। उनमें की एक कहानी का अनुवाद नीचे दिया जाता है।

"एक बार मुझे पुराने दादा के वृक्ष पर भूरे रङ्ग का रेशम
का एक रज्जा कोया मिला। उसे मैंने घर ले जाकर मेज पर
रख दिया। कुछ समय बाद मैं क्या देखता हूँ कि काये में
मैं एक मयूरपंखी कीड़ा निकल कर बाहर झाँक रहा है।
इतना उड़ा पतङ्गा दखन का मौका मुझे और कभी नहीं मिला
था। यह कीड़ा अपने रङ्ग प्रिय पंखों के कारण बड़ा मनोहर
था। उसमें तुरन्त कीच के ग्लास में फँद किया। सन्ध्या
समय जब मरी छोटी घेटी साने के लिए अपने कमरे में जा
रही थी तब वह एकाएक चिल्ला उठी—'दादा दादा, इधर
देखो, तुम्हारा पुस्तकालय तो बड़े बड़े पतङ्गा से भर गया है।
मैं तुरन्त अपनी कोठरी में गया। लगभग एक दर्जन के उड़े
बड़े पतङ्गे कमरे के भीतर उड़ रहे थे। पता लगाने पर मुझे
विदित हुआ कि प्रातः काल पैदा हुई राजकुमारी पर 'टीका'
चदान के लिए ये सब राजकुमार देश दशान्तरों से आ कर
एकत्र हुए हैं। परन्तु इन्हें यह मालूम कैसे हुआ? यह सच है
कि रेशम का कीड़ा कोई साधारण कीड़ा नहीं है और उसकी

“यदि हम मयूरपखी को पने स्थान में उन्द करें, जहाँ गायु
 का आना जाना न हो सक, तो क्या परिणाम होगा ? क्या
 वह अपना विचार तैयार के तार यन्त्र द्वारा अन्य स्थानों को
 भेज सकेगी ? क्या वह विद्युत् या चुम्बक प्रदान में अपना
 काम लती है ? यह सोचकर पतङ्गी को काँच के बाँधे प्याले
 में भीतर उन्द करके मैंने परीक्षा की। प्रथम ही गार कमर में
 निम्नी प्रेमी का आगमन न हुआ। तब मैंने उम प्याले में पत्र
 वारीय सूराम् बनाया। दिग्गता क्या है कि राजकुमारी के
 साथ प्रेमागप करने के लिए राजकुमारा का समूह आ पहुँचा।
 मरी शङ्का का समाधान हो गया, और साथ ही यह भी सिद्ध
 हो गया कि कौनी चाह जिस स्थान में उन्द रहे, यदि थोड़ी
 भी दूर आ जा सकती हो, तो वह अपना सन्देश अपने
 प्रेमिया के पास बिना रुकावट भेज सकता है।

‘इस उडे रहस्य की व्याख्या समाप्त होने के पूर्व कौनी का
 शान्त हो गया और मुझे अपने प्रथम का पूर्णत उत्तर पाने के
 लिए बहुत दिना तक ठहरना पड़ा। सच है, सफ़लता उसी की
 दासी है जो धैर्यवान् है और साथ ही अपने काम में दृढ़ भी
 है। परीक्षा के लिए पतङ्गे कोजते गोजते त्रगभग तीन वर्ष
 व्यतीत हो गए। अन्त में मुझे मयूरपखी तो नहीं, परन्तु उसी
 जाति का एक दूसरा पतङ्गा मिला। इसमें मेरी पुरानी पहिली
 हल हो गई।

तैयार हो गया। पेसा श्री विनाक्षण हाज भूमि श्री माथा का है। इस सम्बन्ध में फेर सादर ने गक चतुर प्राणी की मारी-गरी का हाल जिया है। यहा हम उसका केवल सक्षिप्त विवरण देते है।

प्रकाशन और गुत्ता के पत्ता में विचित्र प्रसार के छिद्र देख पडत है। उन में कुछ तो वृत्ताकार और कुछ अण्डाकृति रहत है। इन छिद्रों का देखने में यही प्रतीत होता है कि यह किसी स्तुत्य और चतुर मारीगर का काम होगा। अण्डाकृति छिद्र भिन्न भिन्न परिमाण के होते हैं; परन्तु ये शुद्धता में कटे हुए रहते हैं। भला, कहो तो इन रूपों को काटने-छाटने वाला दरजी कौन होगा? वह दरजी मधु मक्षिका है जो अपना घर बनाने के लिये काट छाट कर पत्ते पत्र करती है।

पत्ता के अण्डाकृति टुकड़ों से यैली बनाई जाती है जिस में अण्डे और मधु रकये जाते हैं। पत्ता के छोटे वृत्ताकार टुकड़े थैलिया के ढकन का काम देते हैं। इन्हीं से थैलियों का मुँह बन्द किया जाता है। मधुमक्खी १०-१२ थैलियों में अपना घर का गहरी ढाचा बना लेती है। यह प्रायः अपना घर पृथ्वी पर रहने वाले कीड़े मकोड़ों के खाली पिल में बनाती है। यदि पिल की गहराई ६-७ इंच से अधिक हुई, तो यह उसे पत्तों से पाट कर उसकी गहराई कम कर देती है। पिल के अन्य रास्ते भी मजबूत पत्ता के फाटों से रूंध दिए जाते हैं। बहुधा देखा

४७

आकाश-गङ्गा

मन्त्र आकाश की ओर रात के समय देखने में एक सिरे से दूसरे सिरे तक मफेद वादत के समान अनुमान चार हाथ चौड़ा, एक प्रकाशमय पथ दिखाई देता है। उस पथ को आकाश गङ्गा कहते हैं। जोड़ जोड़ उसे दूध गङ्गा के नाम से भी पुकारते हैं। अँगरेजी भाषा में उसे 'मिल्की वे' कहते हैं। यह प्रकाशमय पथ अथवा आकाश गङ्गा असंख्य तारों से बनी हुई एक तेजस्व मालिका है।

बड़े से बड़े दूरदर्शक यन्त्र से इस आकाश गङ्गा का जितना भाग एक बार में दिखाई देता है, उसका एक चित्र एक विद्वान्

पास उगे हुए मालूम होते हैं। पर निकट जाने से यह बात सात होती है कि ये एक दूसरे से बहुत अन्तर पर हैं। इसी तरह आकाश गङ्गा का प्रकाशमान पथ भी हमें ऐसा दिखाई देता है मानो मोती टँके हुए रत्न का एक लम्बा टुकड़ा एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैला हुआ है। अत्यन्त दूरदर्शी दूरबीन से आकाश गङ्गा का जा अप्रतिम सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है, उसका वरुण शब्दों की शक्ति से बाहर है। नीचे दिये गये दृष्टान्त द्वारा उसका कुछ आभास ध्यान में आ सकेगा।

एक बड़े कमरे में शशी मसमन का फल प्रिछा दिया जाय और फिर कमर की छत में प्रिजली के सँकड़ा दीपक जलका दिये जायें। तदनन्तर कमर के काले पथ पर दो मन हीरे, माणिक्य और मोती आदि रत्न प्रिगेर दिये जायें। तब प्रिजली का पथन दम पर सारे दीपक जला दिये जायें। दीपक को जलाने के बाद जो दृश्य उस कमर का हो जायगा, उस के सौन्दर्य से तेज दूरबीन के द्वारा देखे गये आकाश गङ्गा के सौन्दर्य का कुछ अनुमान देखने वाले के ध्यान में आ सकेगा।

तेज दूरबीन से नीला आकाश कहीं कहीं ऐसा दिखाई देता है, माना उस में बड़े बड़े सूर्यों का ढेर लगा है और कहीं कहीं ऐसा भी देख पडता है, मानो इन सूर्यों की दीवारें खड़ी कर दी गई हैं। कहीं कहीं बड़े बड़े मीनार और कहीं कहीं दरवाजे से भी दिखाई देते हैं। कहीं तो ये सूर्य एक दूसरे के निकट ऐसे

हिन्दी गद्य गटिका

साफ साफ चित्र प्लेटों पर लिये जा सकते हैं। यह इस गाड़ी का एक अद्भुत आविष्कार है। सम्पूर्ण नभामण्डल व चित्र २५ हजार भिन्न भिन्न प्लेटों पर उतार गए हैं। उनके द्वारा आकाश के जो अद्भुत चमत्कार लिखाइ देते हैं उनका प्रभाव वगैरे मनुष्य की प्राणी और लखनी में पड़ें। खगोल शास्त्र के जानने वाला का मन तथा बुद्ध इन दृश्यों का देखकर आश्चर्य के महासागर में गोते खाते लगती हैं।

आकाश गद्दा हमसे कितनी दूर है, इसका अनुमान भी हम में से बहुतों ने न किया होगा। उसकी दूरी की कल्पना तुम्हें हो जाय, इस लिए हम उसका कुछ हान सुनाते हैं। मान लो कि एक मिनट में एक मील चलनेवाली गाड़ी पर हम सवार हुए और टूटकर न उसके पंजिन को आकाश गद्दा की ओर उड़ाया। एक घण्टे में साठ मील दौटने वाली हमारी गाड़ी दिन रात चलती ही रही। हम पृथ्वी, चन्द्रमा और सूर्य को भी पार करके आगे निकल जायें। इस प्रकार एक अर्ध शताब्दी तक गत दिन हमारी गाड़ी भागती रह, तब कहीं, हमारे प्रवास का आधा भाग पूरा हो सकेगा। विचार करना चाहिए कि एक घण्टे में साठ मील चलने वाली गाड़ी ने एक अर्ध शताब्दी में कितनी यात्रा की। हिमाचल लगा कर वर्षों की सरया जानने पर कदाचित् मनुष्य की कल्पना को भी चकित हाना पड़े।

ये ताकताए उन्त पास पास दिग्वाइ देती थी। यत्र इन नये निश्राम उनकी दूरी उढती जाती है। आँसों से भी यत्र हम हजारों सूर्य आकाश में लिग्वाइ दन लगे है। जैसे जैसे हम आगे उढते है, ये सूय हम अत्रिफ प्रकाशमान और स्पष्ट दिग्वाइ देन है और इनका परस्पर अन्तर भी अत्रिफ जान पडता है। हम प्रकाश दो अञ्ज वपतक प्रयास करे पर आकाश गङ्गा के प्रदश के तिनार हम अत्रिफ पहुँच जायेंगे, पर आकाश गङ्गा के भीतर आ पहुँचे, यह बात हम अत्र भी नहीं कह सकते, क्याकि उस समय भा ऊपर की ओर दृष्टि डालने से आकाश पथ, जैसा हमका पृथ्वी से दिग्वाइ दता था, वैसाही अस्तरय तारों से युक्त यत्र भी दिग्वाइ दता है। त्र है कि प्रयास में हमारी गाडी वहीं किरा सूर्य के पास न चली जाय, नहीं तो हम और हमारी गाडी भस्मीभूत हो जायें। ऐसा हों से हमारी राय अनन्त प्रदेशों में से कहीं चली जायगी, इसका पता भी हमे न लगेगा।

पृथ्वी से आकाश गङ्गा की दूरी का अनुमान हम ऊपर के उदाहरण से भी ठीक ठीक नहीं करा सक। वास्तव में वह हमारे जगाए हुए मीला के हिसाब से भी अधिक दूर है। कई खगोल शास्त्रिया ने तो गणना की है कि आकाश गङ्गा के अनेक नक्षत्र हम से इतनी दूर हैं कि वहा से हमारी पृथ्वी तक उनका प्रकाश आने में ३,००० से १५,००० वर्ष तक का

गिनती में है। परमेश्वर की अनन्त और अपार सृष्टि में हमारी उड़ी पृथ्वी का काँच हिसाब ही नहीं। हमारे पड़ोसी शुक्र और मङ्गल व निरालिया के सिवाय कोई उमें पहचानता ही नया। मन्मागर के प्राण की असख्य कणिकाया में से एक कणिका रही ता क्या, और न रही तो क्या? जहाँ करोड़ों सूर्यों का भी हिसाब नहीं, यहाँ एक क्षुद्र मनुष्य की कौन गिनती है? परमेश्वर की इस अलौकिक और अपूर्व रचना का विचार कर के भी, मनुष्य का अभिमान यदि न चूर्ण हो जाय तो बड़ दुःख की बात है।

इस महान् आकाश में चमकती हुई असख्य पृथिव्या, अगणित सूर्यों और अगणित तारकायाँ का एक ब्रह्माण्ड है। हमारे शास्त्र कहते हैं कि ऐसे ऐसे २१ ब्रह्माण्ड हैं। वे सब इन्द्रणीय माया के प्रदेश के जिस भाग में हैं, उस में कइ गुना अधिक भाग वाला एक और प्रदेश है। उस से ब्रह्माण्डा की उत्पत्ति का अभी आरम्भ ही नहीं हुआ। यह इतना उड़ा माया सम्भूत प्रदेश परमात्मा के अनन्त और अपार शरीर के साठे तीन करोड़ रोमाँ में से एक की तरह किसी एक कोने में पड़ा हुआ है। योग का तत्त्व जानने वाले महापुरुष यही कहते हैं—रे मनुष्य! माया के इस छोटे से प्रदेश में ही तेरा, तेरी पृथ्वी का, तेरे इस ब्रह्माण्ड का कोई हिसाब नहीं। तो परमात्म प्रदेश में तेरी क्या गिनती हो सकती है? अभिमान

४८

वर्लिन

लेखक—श्रीयुत कृपानाथ मिश्र, एम० ए०

[आपका जन्म चम्पानगर (भागलपुर) में दिमम्बर १९०५ ई० में हुआ था। आप पटना कालेज पटना में अंगरेजी के असिस्टेंट प्रोफेसर हैं। अंगरेजी के विद्वान् होकर भी आप हिन्दी की सेवा करते हैं। आपने विदेश की बात, ध्याम, माहित्य आदश हरयादि सात पुस्तक लिखी हैं। आप योरप की सैर कर चुके हैं।]

वर्लिन आते ही मुझे यारपीय सभ्यता से वितृष्णा हो गई। गत महायुद्ध के बाद योरप का अखल रूप वर्लिन मे ही दिखाई दिया है। विजय हुई फ्रांस इंग्लैंड की, पर विजय के

होगा कि आप रॉलिन के एक भोजनालय में हैं। स्वर्ण भी यहाँ विशेष नहीं। कोई नार रुपये में आप चार-पाँच भापायों में चार पाँच देशों की युवतियों के साथ वार्तालाप कर सकते हैं, चार पाँच देशों के खाद्य और मद्य ग्रहण कर सकते हैं—यदि आपका इच्छा हुआ। इतने सरते दाम में परिस और लदन में किसी प्रसिद्ध भोजनालय में आप प्रवेश भी नहीं कर सकते। ऐसे सुन्दर दृश्य आपको इन ठानों शहरों में कहीं न दीख पड़ेंगे।

पर इससे क्या ? विज्ञान की उन्नति ने रॉलिन ने अपना रूप सृष्ट सजाया। वृद्ध युवक गने। युवक सुन्दर गने। बालिका न शरीर मजबूत किया। बालिकाय बालकों की तरह कमरत करन लगीं। युवतिया प्रेम को पागलों का प्रलाप समझ नाना कर्मों से विरत हुईं। मध्यवयस्क नारी ने अपना रूप, युवती की तरह सजाया। वृद्धा न चम्म के कुञ्जन पर विजय पाई, जवानी के वेग को फिर रक्त में दौड़ाया—ओपधि-प्रयोग से। किसलिप ? बस, यहाँ सभी चुप हैं। कोई उत्तर नहीं दे रहा है इस प्रश्न का। बहुतेरे इस प्रश्न की आवश्यकता भी नहीं समझते। रॉलिन का हृदय सूखा है। इसने मखमल के अँगरग्ये से दिल के घावों को ढाकने का कठिन, परिश्रम किया है। घायल ठेके नहीं, ज्याँ के त्यों हैं। देखने-वाला इन्हें देख ही लेता है, बाहरी परदे को फाड़ कर।

होगा कि आप बर्लिन के एक भोजनालय में हैं। स्वर्च भी यहाँ विशेष नहीं। कोई चार रुपये में आप चार-पाच भापाओं में चार पाच देशों की युवतियाँ के साथ प्रार्थना कर सकते हैं, चार पाच देशों के खाद्य और मद्य ग्रहण कर सकते हैं—यदि आपकी इच्छा हुई तो। इतने सरते दाम में पेरिस और लंदन के किसी प्रसिद्ध भोजनालय में आप प्रवेश भी नहीं कर सकते। ऐसे सुन्दर दृश्य आपको इन दोनों शहरों में कहीं न देख पड़ेंगे।

पर इससे क्या ? विज्ञान की उन्नति से बर्लिन ने अपना रूप नूब सजाया। वृद्ध युवक बने। युवक सुन्दर बने। बालकों न शरीर मजबूत किया। बालिकायें बालकों की तरह कमरत करन लगीं। युवतियाँ प्रेम को पागलों का प्रताप समझ नाना कर्मों से विरत हुईं। मध्यययस्का नारी ने अपना रूप युवती की तरह सजाया। यद्वा ने चम्म के कुञ्जन पर विजय पाई, जत्रानी के वेग को फिर रक्त में दौड़ाया—आपधि प्रयोग में। विसर्लिन ? वस, यद्वा सभी चुप है। कोई उत्तर नहीं दे रहा है इस प्रश्न का। बहुतेरे इस प्रश्न की आवश्यकता भी नहीं समझते। बर्लिन का हृदय सूखा है। इसने मखमल के अंगरखे से दिल के धावों को टाँसने का कठिन परिश्रम किया है। धावों के नहीं, ज्या के द्यो हैं। देखने वाला इन्हें देख ही लेता है, बाहरी परदे को फाड़ कर।

in which part, is Sanskrit in India?" इसने संस्कृत का एक शहर समझ रखा था। प्रायः सभी जर्मन संस्कृत की सभ्यता हैं। गौरी की जीवनी पढ़ने हैं, रघुवंश डाकुर की शिल्पा मुख्या करते हैं। ज्ञान की तृष्णा जर्मनों का वृत्त है। ये सभी बातें जानते हैं। विधाता से ही इनकी होड़ है।

जानना और समझना एक नहीं। आप फूल के सम्बन्ध में मभा बातें जान सकते हैं—फूल क्यों खिलता है, किस सरल पदार्थ के अणुव में उसका रूप परिपुष्ट होता है, प्रकृति के किस नियमानुसार उसका नाश हो जाता है, गन्ध का आधार कौन सी उष्णता है। पर फूल का समझना ही नहीं (गायक अग्नि) जो फूल के रहस्य को स्वीकृत कर फूल के मर्म की आर ध्यान दौड़ाता है। जर्मनों ने सभी परतुओं का जानने की असाधारण चेष्टा की है। ये सफल भी हुए हैं दूर तक। पर सफलता की मात्रा इनकी वे समझ की मात्रा के तुल्य है। इन्होंने जाना सब, समझा कुछ भी नहीं। जीवन की सभी शक्तियों को पराजित कर इन्होंने जब पूछना चाहा, 'अब किधर?' तब उत्तर मिला ही नहीं। प्रश्न की प्रतिध्वनि व्यङ्ग्य करके विलीन हागड़।

फलतः आनन्द के बदले जर्मनों ने पाया कौतुक भय हर्ष (Sensation) — अंगरेज बेचारा सोचता ही नहीं। उसका जीवन भारत-गर्भ के अपठ ग्रामीण की तरह किसी प्रकार स्वच्छन्द

हिन्दी गद्य पाठिका

in which part, is Sanskrit in India ?" इसने संस्कृत का एक शहर समझ रखा था। प्रायः सभी जर्मन संस्कृत की स्मरण रखते हैं गाँधी को जीवनी पढ़ते हैं, रवीन्द्र ठाकुर की रचना सुगन्ध करते हैं। ज्ञान की तृष्णा जर्मनों का रुचि है। ये सभी बातें जानते हैं। विधाता से ही इनकी होड है।

जानना और समझना एक नहीं। आप फूल के सम्बन्ध में सभी बातें जान सकते हैं—फूल क्या खिलता है, किस सरल पदार्थ के अणु से उसका रूप परिपुष्ट होता है, प्रकृति के किस नियमानुसार उसका नाश हो जाता है, गन्ध का आधार कौन सी वस्तु है। पर फूल का समझना है वही (शायद कवि!) जो फूल के रहस्य का स्मरण कर फूल के मर्म की ओर ध्यान दीडालता है। जर्मन ने सभी वस्तुओं को जानने की असाधारण चला की है। ये सफल भी हुए हैं दूर तक। पर सफलता की मात्रा इनकी वे समझ की मात्रा के तुल्य है। इन्होंने जाना सब, समझा कुछ भी नहीं। जीवन की सभी शक्तियाँ को पराजित कर इन्होंने ज्ञान पूछना चाहा, 'यव विधर ?' तब उत्तर मिला ही नहीं। अज्ञ की प्रतिध्वनि व्यङ्ग्य करके मिलीन हागई।

फलतः आनन्द के उद्वेलित जर्मनों ने पाया कौतुक मय हर्ष (Sensation)— अंग्रेज बेचारा सोचता ही नहीं। उसका जीवन भारतवर्ष के अपठ ग्रामीण की तरह किसी प्रकार स्वच्छन्द

हिन्दी गद्य गतिमा

समान मन से दूर कर दिया। कुछ दिनों तक सुब मजा रहा। पर अब लाग अपनी गण्डवन्तता से थक कर पड़ रहा है, 'अप्रतिग' ? सोइ भी उत्तर नहीं मिल रहा है। हृदय के प्राय सभी रस सूख चुके हैं। संसार के प्राय सभी पक्ष नष्ट हो चुके हैं। अब किस की पारी है ? किसे अब ताड़ेंगे, ये ज्ञानपल पूरा जमा ? ये गण्य नहीं जानते। अभी अग्रथा में एक जमन दूसरे जमन से कुछ पूछने का साहस नहीं कर रहा है। दाना के दृश्य सुने हैं। पर जर्मन रमणी दूसरी जमन रमणी का देख कर सिन्ध उठती है, दोनों न प्रेम को जग दिया है। इस हृदय की मरुभूमि में पहुँच कर जर्मना न एक स्वैंग रचना आरम्भ किया— शरीर का सौंदर्य के आभरण से सजाना। इसी स्वैंग में ये आज फल निरत हैं। चारों ओर फिर विज्ञान की भैरी बज उठी है। लोग अपने आप का मुलाने का दाखल प्रयत्न कर रहे हैं। पाप और पुण्य के द्विविध भारा को मुलाने कर जर्मनी फिर असीम शक्ति की उपासना में लीन हुआ है। उसे किसी की परवा नहीं, न अपनी आत्मा की ही सुन है। आध्यात्मिक दृष्टि से जर्मनी विधवा है। इन वैधव्य की सूचना जर्मनी का बार बार मिल रहा है, पर प्रति बार वह धरुणाभास से इस सूचना की ध्वनि को अन्यान्य ध्वनियों में डुबा डालती है। जर्मनी का आधुनिक इतिहास धेरया की दुःखपूर्ण गाथा

फिर्मी रंग के सामान । यह आडम्बर फिर क्या ? इगलिये फिर् जर्मन का क्षत बक्ष रयत आज भी फिर्सी रपूह साम्राज्य का म्यज्ज देव रहा है, इस लिंग फिर् भग्न आशाया की नमात्रि पर भी जमा अपने को देशताया का सहपाठी समग्रता है । यह भूल है । जर्मना की शक्ति योरप की अन्धी शक्ति का सर्वोच्च शिखर है । जमन रुकना जानते ही नहीं । ठस जय जय लगती है तब वे रडे होकर और जोरा से दौडते हैं । ऐसी दौड म मादकता भरी है । ऐसी दौड चलु हीन असीम बलशानी युयक की तरह अनुकरणीय नहीं, उरुण हाती है ।

जर्मनी की यह शक्ति, ऐसी आदृशहीन माधना विशय के लिए महस्वपूण आध्यात्मिक चितायनी है । और यही जर्मनी का विशय को एक मात्र दान है । जिसने अपने आपको खोया है वह दूसरों को चितायनी के अतिरिक्त और कुछ नहीं दे सकता । जिसने अपने को ढूँढने की शक्ति का अपव्यय किया है वह दूसरों से कौतूहल उत्पन्न कर सकता है, दूसरों को थानन्दित नहीं कर सकता । जो कुमारी विधवा हो चुकी है वह दूसरों को सोहाग का स्वप्न कैसे दिखावे ? जिस पिंजडे में चिहिया नहीं उससे सजानेवालों को देखकर क्षोभ नहीं तो और हा क्या ?



(एक सभासद का रण क्षेत्र में प्रवेश)

सभासद—सन्तार, महाराणा के शरीर में अगणित घाव लागे हैं, रक्त का धारा निरन्तर रही है, तलवार चलाते चलाते जाना हाथ धर गये हैं। चट्ट घोंडा मृतप्राय हुआ गया है, राणा फिर भी पागलों की तरह तड़क रहा है। इस विपत्त समय पर हम क्या आता है ?

चन्द्रा०—तुच्छ नहीं। राणा का साथ साथ युद्ध करने जाओ। लड़ते लड़ते मर जाओ। मैंने उपाय साच लिया है।

(सभासद का प्रस्थान)

चन्द्रा०—चित्तौड़ ! जन्म भूमि, प्रणाम ! तुम्हारा यह तुच्छ सेरक आज यिर्दा नेता है। मां, जाते-जाते तुम्हें अन्तर्गत न देख सना, अन्त मर कर देखने की अभिलाषा है। अपने भद्रादेशों के हाहाकारमय स्वर में एक बार आशीर्वाद दो। मां, हँसते हँसते मरने की शक्ति प्रदान करो। जीवन के अन्तिम क्षणा में कृत्य पालन करने का अन्तर दो। जिस राज मुकुट का इन हाथों में, तुम्हारे हित के लिए, गीर्ण प्रताप के मन्तव्य पर रक्षित था, उसे यही उतारेंगे, तुम्हारे सम्मान की रक्षा के लिये—आशा नेता को कुचलने से बचाने के लिए—आज महाराणा प्रताप के बदले यह चन्द्रावत प्राणों की बाहुति देगा।

(प्रताप का रणान्त क्षेत्र में उधर से गुजरना)

कोई नजर नहीं आता जो चिचौड के उद्धार के लिए इतना त्याग कर सके। हठ न करें, देर, आप रजदश की आशा हैं। आपका यह क्षणिक हठ मवाड की अम्बुषड पराधीनता का कारण ही जायगा।

प्रताप—निश्चय कर चुका हूँ, चन्द्रावत जी, जीते जी रण से विमुख न हूँगा। क्षत्रिय परिस्थितिया का दाम नहीं, म्बामी हाता है। आप ये अपनी नित्रिया जीजिए। मवाड के महाराणा ने दश के लिए एक सामान्य सैनिक के वेश में मग्ना खूब सीखा है। (फुरती से तलवार पर मुकुट रख कर चले जाते हैं)

चन्द्रा०—प्रभा! राणा की रक्षा करो। (मुकुट हाथ में लने हैं) आ! मीटां र ताज! सकट क म्नेही! मवाड के राजमुकुट था! तुझे आज एक तुच्छ सैनिक धारण कर रहा है। इस लिए नहीं कि तू वैभव का राजमार्ग है, बल्कि इस लिए कि तू दश पर मर मिटने वालों का मुक्ति द्वार है। आ मेरी साधना का अन्तिम साधन। इस अवनत मस्तक को माँ के लिए कट मरने का गौरव प्रदान करा।

(मुकुट पहन कर प्रस्थान)

(शकसिंह का प्रवेश)

शक—(नेपथ्य की ओर इंगित करके) घोर युद्ध हो रहा है। ए! चन्द्रावत ने मवाड का राजमुकुट पहन रक्खा है। मुगला ने उसे प्रताप समझ कर चारों ओर से घेर लिया है।

हिन्दी गद्य-याटिका

। १

। १ ११

पहला मुगत—चलो जहद, उमे पीछे मे तीर मार कर गिरा
दगे, फिर गीध कर—कैद करक—शाहजादा माहव को नजर
करेगे और मारे इनामां क मानामाज हो जाएंगे। (प्रस्थान)

शक्त—लेकिन इसक पहल ही दाजग चलें जायेंगे। कर्मान
कुने घायल शेर पर दूर स देला फकना चाहते हैं। तलवार के
पर ही गार म दो के चार हो जाएंगे इसका पता ही नहीं !
शक्तसिंह, अभागे शक्तसिंह, अर भी ममय है। इन कुतों
को राह ही मे खपा कर मरन क पहलें मातृभूमि मराह का
कुछ हित-साधन कर ल ! हृदय बाल, बन्त निनां म, जी भर
कर बोल, प्यारा बाल, पुराना गीत, हर हर-महादय !

(पद परिवर्तन)

दूसरा दृश्य

(गैरुप पत्र पढ़ने प्रती के बंठा मे शक्तसिंह)

शक्त—जीवन एक इतिहास बन गया है। भाजाभाला
शैशव, पिता का तिरस्कार, उद्दाम यौवन, भाई स कलह, बदल
की प्यास, अक्बर का आश्रय, हल्दी घाटी का संग्राम, पश्चानाप,
भाई स भेंट, “क्षमा” ! दुनिया की दृष्टि मे जीवन समाप्त ! शक्त
के हृदय की दशा कौन जानता है ? जीवन नाटक का तृतीयंक
मारा का सारा, ‘स्वगत’ हुआ चाहता है। ससार केवल एक
भिष्ठुर सन्यासी का करुण गान सुन पायेगा और, कुछ नहीं !
मरी साधना नीरव है ! मुझे कोई ठीक ठीक न जानेगा !

हिन्दी गद्य यादिका

सुनो ददा की वरुण पुकार
आज भिखारी आया द्वार

प्यारे लाल, लाडल भाइ,
भर्ता, पिता लुटादा आज
थो 'जौहर' प्रत वाती बहनो
जन्म भूमि की रखतो लाज

खोला खोलो हृदय उदार
आज भिखारी आया द्वार

घन घन पागल से फिरते हैं
आज पुजारी मा के लाल
आशुतियां भेजो प्राणों की
फिर उन्नत हो मां का भाल

बलि वेदी पय रही निहार
आज भिखारी आया द्वार
पट परिवर्तन

(प्रस्थान)

['प्रताप-प्रतिज्ञा मे]

—नगसाथ प्रसाद 'मिहिन्द

हिन्दी गद्य गादिना

अमरिका का स्वाज का दाया अनेक गातियां और मनुष्या न किया है। चीनी, जापानी हिन्दू, तुर्क, अरब, रामन और अनेक यूरोपियन जानिया न अमरिका स्वाज निवाजन का अय चाहा है। बहुत सम्भव है कि हर एक के दावे में कुछ सत्य का अंश हा, परन्तु इस में कुछ भी सन्देह नहो कि कातम्बस की स्वाज से यूरोप यात्री का ध्यान अमरिका की ओर आर्कषित हुआ और यूरोप के लोगों न अमरिका जाना आरम्भ कर दिया। स्वाज काल की अमरिका कोतम्बस की स्वाज और उदसाह का फल है।

कोलम्बस का जन्म इटली के जिनोव्हा नामक नगर में हुआ था। उसके पालन के विषय में अधिक पता नहीं चलता, परन्तु यह अश्य मालूम है कि बौद्ध धर्म की अयस्या में ही उस न पढ़ना लिखना छोड़ कर समुद्रचर्या आरम्भ कर दी थी। उस समय भी उसे ज्यातिष आदि विषया का न्यूनाधिक ज्ञान हो गया था। नौ विभाग में उसने शोध उन्नति दिखलाई। उसने समुद्र मार्ग से कई बार इटली, पुर्तगात, इंग्लैंड आदि देशों की यात्रा की। सौभाग्य उस उमका विवाह वाटोतोमिया नामक एक सुविख्यात समुद्री यात्री की कन्या से हुआ। अपने श्वशुर के नकशा से कोलम्बस का ज्ञान मूर बढ गया।

पन्द्रहवीं सदी के अन्तिम भाग में यूरोप-वासियों को

विश्वास रखते थे। कुछ ऐसे भी लोग थे जो प्राचीन विज्ञान का थोड़ा बहुत जानते थे। उस सभा के सम्मुख कालम्बस ने अपने प्रस्ताव उपस्थित किए। इसी धर्मविचारियों ने गणित तथा अन्य धार्मिक लेखकों के ग्रन्थों का प्रमाण देकर यह कहा कि न तो धर्म के अनुकूल, न इतिहास के मत से और न दाशनिह सिद्धान्त से पृथ्वी का अण्डाकार माना सिद्ध हो सकता है। गणित के प्रमाणों का ताब मानत ही न थे। अत्र कचरे रूतानिका ने कहा कि यदि मान भी लिया जाय कि पृथ्वी गोलार्ध है तो भी कालम्बस की रूपना असम्भव ही है। कारण यह है कि पृथ्वी का कटिबन्ध इतना उष्ण होगा कि वहाँ जाना ही असम्भव है। और यदि किसी प्रकार गर्मी सहन भी हो सके तो भी पृथ्वी की गालाई की परिधि इतनी अधिक है कि उस के द्वितीयार्द्ध तक पहुँचने में कम से कम तीन वर्ष लगेंगे। उन्होंने एक प्राचीन लेखक की साक्षी देकर कहा कि पृथ्वी का दूसरा अर्द्धांश जलमय और अन्त व्यक्त है। अन्त में उन्हें ने यह भी कहा कि यदि कटिबन्ध के नीचे जहाज गया तो फिर लौटना असम्भव है, क्योंकि लौटते समय चढ़ाई पड़ेगी। चूंकि कटिबन्ध बड़ा ऊँचा होगा, इस लिए अति अनुकूल वायु मित्रण पर भी उस को पार करना नितान्त असम्भव है। सारांश यह कि विद्वत्सभा ने उसके प्रस्तावों को असम्भव और उपहास जनक कह दिया। इसी समय रपेन में युद्ध भी

दर, आशा दिलाकर, पक्षियों के उड़ान से और शैवाल के उड़ान से भूमि के समीप होने की सम्भावना उत्पन्न कर और समय-समय पर डाट टपटकर किमो प्रहार कालम्बस के गेटा से काम लेता ही रहा। अन्त में उस अपना अदम्य उत्साह, मानस, धैर्य और ज्ञानि का पुरस्कार मिला—ब्राह्म अक्षरों का उस भूमि के दर्शन मिले।

उस द्वीप का कालम्बस ने 'सान सेल्योटोर' नामकरण किया। यहाँ के निवासी अस्त्रहीन और विलकृत नग्न घूमते थे। कुछ स्त्रियाँ तो अश्वय पत्तियाँ, लताओं अथवा सुती रुपडा के टुकड़ों से अपने अङ्ग का कुछ ढक्ती थी, लेकिन अधिकांश स्त्रियाँ पुरुषों की तरह विचरण करती थीं। यहाँ के निवासियों का लोह का ज्ञान न था और न उनके पास अस्त्र-शस्त्र थे। वे कपड़ों के छडियाँ, जिनके नीचे लकड़ी का नुकीला टुकड़ा बँधा रहता था, लिए फिरते थे। उनका भी शायद हाथ भी वे उपयोग करते हैं। वहाँ की स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक परिश्रम करने वाली थीं। यहाँ के नर-नारी मीठे और सरल स्वभाव के थे।

द्वीप के निकट जहाजों को देखकर वहाँ के निवासी भीतरके से हो गये। वे समझे कि जहाज समुद्र के कोई जात-जतु हैं जो सहसा रात्रि में निकल कर द्वीप के निकट आ गए हैं। उन्हें देखने के लिए झुंड के झुंड मनुष्य समुद्र तट पर एकत्रित हो गए। परन्तु जब जहाजों से उतर कर कालम्बस और

उस द्वीप में समुचित रक्षण न मिलत व कारण पर इस विश्वास में प्रेरित हुआ कि आगे चलकर स्वर्ण पूण देश मिलगा, कालम्बस गामे उठा। इस पार उसे क्यूरा और हस्पिनाला द्वीपों का पता चल गया। अगले मास में उसका जहाज 'सना मरिया' घटान से दरवार नष्ट हो गया, अतएव उस दूसरे व जहाज में शरण लेनी पड़ी। इस कारण तथा साथियों के आग्रह से वह रपेन की ओर जाट पडा।

रपेन पहुँचने पर कालम्बस का उडा आदर हुआ। जिस जिस नगर में हाता हुआ वह जाता था उस उसमें हर्ष, आनन्द और सम्मान की सीमा न रहती। उसी पालास नामक नगर में, जहा वह गिहठार पर खड़े हाकर अपने भूय उच्च से लिए राटी माँगता था, उहा राज उसका शत्रु हाथ लाग ले रहे हैं! यही नहीं, राज दरार में भी उडा उत्सव मनाया गया। कोलम्बस का राजधानी में बडे समाराह में स्वागत हुआ। सर्वाङ्ग-पूण दरार में मन्ताराज फर्डिनंड और महाराणी आइसारेला ने उसको निमन्त्रित कर, उसके श्रीमुख से उसकी खोज का विवरण सुना। उसके कामदर्पक और उत्तेजक वृत्तान्त को सुनकर दोनों पुलकित हो गये और उन्होंने घुटनों के उल झुककर ईश्वर को धन्यवाद दिया।

कोलम्बस की खोज से यूरोप के अन्य राज्यों और राजाओं में भी नये जीवन और उत्साह का सञ्चार हो गया।

५१

दीर्घ जीवन

अंगरेजी में एक कहावत है—'सिम्पल लिविंग एंड हाई थिंकिंग' (Simple living and high thinking) । इसका अर्थ है सादा जीवन और उच्च विचार । जीवन को सुखमय बनाने के लिए इससे अतिरिक्त मुख्यतः शिक्षा और कोई नहीं । पश्चात्त्य सम्यता का आदर्श इससे भिन्न है । सम्यता का अर्थ यह नहीं कि आवश्यकतायें जितनी अधिक बढ़ाई जा सकें, बढ़ाई जायँ, किन्तु सादा जीवन और उच्च विचार है । भारत के प्राचीन ऋषि मुनियों का यही आदर्श

आनन्दमय प्रवृत्ता है। माना जोग में अथ गीता र श्रुति में
युगाहार विहार' में है क्योंकि श्रीशुभा भगवान् कहते हैं —

नाम्यध्यास्तु योगाऽग्नि र वैकान्तमनःतः ।

न चानिन्द्रप्रशीतस्य जाग्रता नैव चासुत ॥

अर्थात्, र श्रुति, यह योग न वा यद्वा ग्याग्याग का
मिद्ध हाता है, योग न मिद्धकुल न मानेयात का, तथा न शक्ति
अथ करने के म्यभाय याते का योग न अत्यन्त जाग्रते याते
को ही मिद्ध होगा है।

इसलिये दीर्घ जीवन प्राप्त करने के लिए युगाहार विहार
अर्थात् सादा जीवन व्यतीत करना अत्यन्त आवश्यक है। जो
लाग समझते हैं कि सादा भोजन करने तथा अपनी आवश्यक-
ताओं का कम करने से जीवन के आदर्श से गिर जायेंगे वे
जान बूझ कर अपने पापों में कुदहाड़ी मारते हैं, अपने जीवन
का छाटा बनाते हैं और जीते हुए भी जाग्रत का आनन्द
नहीं भोगते। जो लोग चिन्ता मिच-बुद्धि हत्यादि के भाजन
नहीं करते, चिन्ता चाय और कुदहों के शरीर में उत्तेजना का
अनुभव नहीं करते भ्रमपान के बिना नहीं रह सकते, उनके
लिए दीर्घ जीवन का द्वार सदैव ही खुल रहता है। सादा
भोजन और सादा जीवन मनुष्य की आयु को १००, १२५, १५०
वर्ष तक बढ़ा सकते हैं। पर सज्जन पर दीर्घ जीवी मनुष्य
के तार में कहते हैं—

हन्गी फोर्ट के अन्त में दीर्घ जीवन प्राप्त करने में हानि कारक है। वे भविष्य वाणी करते हैं कि भविष्य में मनुष्य इन उन्तुया का प्रयोग मिलकुल उड लंगा।

अच्छा भोजन मितन पर यह नहीं है कि चाहे जितना खा जाना चाहिये। वृत्तिक जितनी भूख हो अथवा जिननी पाचन शक्ति हा उतना ही खाना चाहिए। पचने के पश्चात जो प्रच जाय उसको शरीर में से चाहे जैसे ही निष्कात डाना चाहिये। आराम्य और दीघ जीवन का यह सप्रश्रेष्ठ नियम है। एक डाक्टर रहत हैं कि 'अपनी पाचन शक्ति और अपनी भूख दोनों को भे प्रकार तोल ला। इस प्रकार शरीर क अङ्ग अपना काम उचित रूप से करेंगे। २० घाडे की शक्ति गले डचिन से ५० घाडे की शक्ति की आशा न करो। तुम सदैव इस बात की शक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न करो कि अच्छे भोजन में से जितना मार तुम ग्रहण कर सकते हो करो और पश्चात जो प्रच जाय उसको पूर्ण रूप में शरीर से बाहर निष्कात दो। जो इजिन तर तर भली भाँति कार्य नहीं कर सकता जब तर उसका प्रयोग में आया हुआ सण्य पण्य रूप से बाहर न निकल सके।

जब भोजन भली भाँति चगाया जाता है तभी वह जल्दी पचता है। इसलिए भोजन जल्दी जल्दी नहीं निगल जाना चाहिए, वृत्तिक धीरे धीरे चगाएर खाना चाहिए। इससे

हिन्दी गद्य यादिका

मारी इन्द्रिया अपना अपना राय उचित रूप में कर रही हैं। उनका भाजन प्रतिदिन दो सेर गाय का दूध, प्रातः का ४, ५ राटियाँ और सायंका ४ राटियाँ हैं। अपनी इस उत्तम आरोग्यता का कारण वे बताते हैं कि उन्होंने अभी मिर्च, तड़, खटाड़ और गुड़ नहीं खाया। दूधपान इत्यादि तो उनके पास तक नहीं फटकेता। यही कारण है कि वे प्रीतिभोजों तक नहीं सम्मिलित होते। समय पर भोजन करते हैं। अर्थात् सादा जीवन व्यतीत करती हीसे उन्होंने ऐसी सुन्दर आरोग्यता प्राप्त की है।

एक और ऐसी ही दीर्घ जीवी सज्जन हैं, जो इस समय ८५ वर्ष के हैं। वे अपना भोजन स्वयं बना लेते हैं, समाचार-पत्र पढ़ लेते हैं और मील डेढ़ मील टहल भी आते हैं। वे भी मिर्च, तेल, खटाड़ इत्यादि का प्रयोग नहीं करते। अन्न के अतिरिक्त १॥ सेर दूध पचा लेते हैं। वे आरोग्यता के लिए एक मन्त्र बतलाते हैं। वह यह कि 'सर्वरोगे मलाश्रये।' इस लिए जिस प्रकार हो शरीर के भीतर से मल निष्कास देना चाहिए। मल को दूर करने के लिए वे एक ऐसी आपधि का प्रयोग करते हैं जो न तो पृथ्वी में उत्पन्न होती है न आकाश में, न उसमें काढ़ गुण और न उसका कोई आकार। वह आपधि उपवास है।

इस लिए सादा जीवन और उच्च विचार ही मनुष्य को दीर्घ जीवी और सुखी बना सकते हैं। —चक्रवर्तिलाल गर्ग

यथा ह्यग्निगाम आया गौर उन्ने इन्द्रा उल्लेख मायूना
(M₂ १०-१०) ऋ नाम मे क्रिया । अस्तु, मायापुर के ध्वसा
उत्थेप यतमान हरिद्वार म कुठ दक्षिण जांवर अर भी दाव
पडते हैं । इन्हें लखन पर ऋजिगहम माह्व ने भी उपयुक्त
धारणा फा मत्य माना है ।

या तो हरिद्वार की मलिमा गगा जी मे है, किन्तु कपिल
मुनि का स्थान, दक्ष प्रजापति ऋ यज्ञस्थल तथा सती कुड के
क्षेत्र और कुम्भ के रागण यत्र बहुत प्रसिद्ध है । स्कन्द आदि
पुराणा म इम कुम्भ की उठी मरुता है । जिस उप यहा कुम्भ
हाना है, उसके कुठ दिन पूर वृन्दावन मे बहुत दिनों मे
वैष्णव सम्मेलन हाना आया है । वैष्णव लोग वहीं मे गाजे
गाजे, हात्रां घाडे, और अरत्र शम्भ्रां मे सुसज्जित होकर
हरिद्वार कुम्भ स्नान करन आते हैं ।

अब ता उपर्युक्त बात नाम मात्र की रह गई है, परन्तु
प्राचीन का म इम की बहुत आश्चर्यता थी । कारण, उन
दिनों हरिद्वार मे शैवों की उती गोलती वा । सुभीता पाते ही
व वैष्णवों का मार डालते थे । कहा जाता है कि किसी आत
शैव सन्यासी का नियम था कि पिना पर वैष्णव का छिन्न
मस्तर दखे वह जल तत्र नहीं पीता था । वैष्णव हरिद्वार मे
कुभ स्नान का लोभ सवरण न कर सकने के कारण प्राय
तलवार के घाट उतारे जाते थे । यही नहीं, ऐसे अवसरों पर

हिन्दू मय शक्ति

हरिद्वार में यह शक्तिप्रदायक है। यह एक बहुत प्राचीन नगर है। हिन्दुओं का पवित्र तीर्थ स्थान है और श्रुति के अनुसार मन्दिरोत्तम उत्तम स्थिति में शक्ति निवृत्तन में प्रसिद्ध है। शहर की आगदी गंगा न दक्षिण तट पर है। यहाँ से गंगाजी की यह नहर निकाली गई है, जो ५० फी० के लम्बाई में गंगा का उदग पर पुनः काशीपुर में पान गंगा में आ मिलती है। हिन्दु नदरों के कारण शक्ति प्रायः बहुत शीघ्र रह जाती है। गंगा की शक्ति का कारण ही यहाँ आसानी से एक राधे बनाया है, जिन के ऊपर एक सुन्दर पुतली है। शहर छोटा, पर जनसङ्ख्या है। अतः यहाँ शक्ति की शक्ति की बढ़ाए और नल न पानी लागू हो आहार है। हिन्दु इनका देखन कोई नहीं जाता है। हरिद्वार में दर्शनीय है — कल कल निनादिनी माता गंगा की शक्ति जल प्रायः, उदरान तीर्थ चैत, उदरान भुवन-माहिनी छवि, पत्नी के मनाहर दृश्य, नदी नालों का सुन्दर शक्ति और जल गुह्य, पशु-पशु, वृक्षां तथा पुष्प पत्तियों का अनन्त शक्ति—मनोमग्न पर शक्ति बहार।

हरिद्वार में निम्नलिखित स्थान विशेष रूप से दर्शनीय हैं—

‘हर की पैटी’—यह तो हरिद्वार का एक भाग ही इन नाम से प्रसिद्ध है, परन्तु मुख्य स्थान घाट, जहाँ पर कुम्भादि में बड़ी भीड़ होती है, वही स्थान ‘हर की पैटी’ के नाम से पुकारा जाता है। इसे ही हरिद्वार का शक्ति कहना चाहिए—

सन् या कात म गगन धार र मन्दिरा मे धारती होन लगती है। गट और गटियाला जो मधुर गायिनी दिशाया को गुंजात गगी है और उस का प्रतिध्वनि गंगा क कत कत म मित कर दूर क पनाडा म टफरानी है, तय हृदय पर अपुर उत गता - एर मदान् उत्प्रेक्षा का अनुभव करत गगना है। जिस समय गित्रयो मगतमान करती हुड दोनों मे दीप मात्रिमाणं जता कर उन्ह परित्र जादवी म प्रगाहित करती हैं और उन की उाटी छाटी टालियो गगा की प्रवल धारा म हिलती गोगती हुई आगे रडता है—दूर दूर तरु जाती है, उस समय की यह स्वर्गाय त्रि दख देग कर मनुष्य चकित और अमाहित रह जाता है। आकाश की झिल मिल तार माणं यह दृश्य देव देव कर क्या माचती होंगी—वे ही नाँ !

‘ब्रह्मकुंड’—गगा की धारा ही मे हैं, पर यही पर उस का चग कम है। यन् सत्र से जनाकीर्ण एर सुन्दर स्थल है। इस के गट की सीडिया मद्द मरमर की रनी हैं और ऊपर गगा जी तथा अन्य कितने ही देगी दयताया के मन्दिर है। इस में मछलिया रहत हैं। ये बहुत शाख हैं—एरदम नहीं डरतीं। लोग उन्ह आट की गायिया गिताते और उनकी थापत की छीना अपटी मौतुफ से देखत हैं।

‘भीम गदा’—इस को कोई कोई भीम घाडा भी कहते हैं।

हिन्दी गद्य गादिश

गात्र उम की सती कृण्ड' रुत है। कहा जाता है, उस में खान करने जाती खियां का सौभाग्य सती जैसा थचल होता है। ज्ञान प्राप्त कर जिम खान पर दक्ष न शिखमूर्ति की रगपना की थी रती पर आज दक्ष प्रजापति का मन्दिर है। किन्तु उम में अब काइ गहरी रमणीयता नहीं है। नील धारा घाट पर अखण्ड गौरीशङ्कर और त्रिवेश्वर महादेव का मन्दिर सुन्दर और प्रसिद्ध है। यहाँ पर गङ्गा जी में पड हुष गाल मटाल पत्थर दखने में उड ही कौतूहल खर्रर जान पडते हैं।

'हृषिकेश' —भी हरिद्वार का समीप ही है। यहाँ जान के लिए रल भी है और माटर-खस भी। हरिद्वार से हृषिकेश तक रास्त का दृश्य उडा सुन्दर है। णर और गङ्गा और दूसरी और वृक्ष, तता, पत। दूर तक यही सिलसिला है। हृषिकेश में भी आवादी बढ रही है। यहा भरत और राम जी के मन्दिर प्रसिद्ध है। प्राकृतिक शोभा यहा की भी उडी मनो हरिणी है। यहाँ पर गङ्गाजी धूम सी गइ ह। अतपर धारा प्रयत होकर उहती है और हरिद्वार के कल-कल नाद के खान पर हर हर का शब्द सुन पडता है। पास ही एक पहाड पर टिहरी गढवाल के महाराज का 'नरेन्द्र' नगर है। दूर से हम का दृश्य सुंदर दीख पडता है।

'लक्ष्मण झूला'—हृषिकेश से थोडी दूर आगे है। यह प्रकृति की गोद में बसा है। तीन ओर ऊँची पर्वत मालाएँ

हिन्दी गद्य शक्ति

उदात्त वैजनायक द्वारा सत्यापित गमतीथ पुस्तकालय भी
दखा की चीजा में सुगम है। यदा का प्राशुनिह सौंदर्य निर-
खने ही लायक है।

मुझे हरिद्वार में केवल चार दिन ठहरने का अवसर मिला।
किन्तु वह यात्रा और वह स्थान, वह कारणों से, जन्म भर
न भूलूँगा। और उन में भी हरिद्वार की वह सध्या! घटे
घडियलां और आरती स्तुति का वह रागरी! कस्तूरालिनी
गंगा का वह कल कल छत छत शब्द! उसकी लहरों के थपड़ा
से उठने वाली भीनी भीनी जल प्रवाह! तट पर टहलने वालों
का वह आनन्द विहार! वहाँ की चहल पहल विद्युत् प्रकाश
के तरंग-वीचियों पर पडने की अपूर्व शोभा—अनन्त सौंदर्य
की रचना—ये दृश्य तो आज भी आँखों के आगे जया-के त्यों
नाच रहे हैं। इस यात्रा के अनुभव सचमुच अपूर्व थे। उन्हें
इस जीवन में मैं भूल नहीं सकता।

श्रीगिरीन्द्र नाराण सिंह

[बालक से]

भारतवर्ष में इतिहास के दो बड़े उठे पुराने ग्रंथ हैं—रामायण और महाभारत। दोनों जग जाहिर हैं। दोनों में वीर गालका का बहादुरी का बखान मिलता है। रामायण में कुश और तप की कथा मशहूर है। उन दोनों वीर गालका ने भरत लक्ष्मण जैसे अगडधत्त वीरों के हथके छुडा दिए थे—सुग्रीव, अंगद, जाम्बवान आदि बाँध लडाका की पूँठ पकड पकडकर घसीट मारा था—वालका क्या थे, आफत के परकाले थे। कभी उनकी बहादुरी की बातें भी सुनाऊँगा। पर इस समय उन्हीं के समान एक दूसरे वीर गालक की कथा सुनाता हूँ— जैसे वे ब्रह्मा युग के अन्त में हुए थे वैसे ही यह द्वार युग के अन्त में हुआ था। इसकी कथा महाभारत में लिखी है। नाम इसका अभिमन्यु था—अर्जुन का बेटा भीम का भतीजा, श्री कृष्ण का भाँजा, सुभद्रा का लडाका। भला ऐसे बहादुर के बल और तेज का क्या ठिकाना! बाण चलाने में बाप के समान, रूप की सुधराई में मामा के समान! एक ओर दैवता है बाप के हाथ में प्रचण्ड गाठीक, दूसरी ओर बड़े ताऊ के हाथ में खोपड़ी चूरन गदा, और मामने की ओर मामा के हाथ में सत्तार-भर की शक्ति की बागडोर! फिर क्या न उस का नया मूँ लडाइ के जोश से उखलता रहे—क्या न बल की उमङ्ग में उसकी बोटी बोटी फडकती रहे—क्यों न उसके रोम रोम से शक्ति की मिजली निकलती रहे—क्यों न वह

गते हुए समुद्र की उती चीर कर उड़ा भारी जहाज आगे बढ़ता जा रहा है !

पर अब कसे आगे बढ़ेंगे ? वह देखो, महाराज बृहद्वल आकर भिड़ गए—राक दिया राम्ता—छिड़ गई लडाई—छिप गए अभिमन्यु उनके राणों में ! पर यह क्या ? वाणा की गदा का तितर बितर कर तेजस्वी सूर्य की तरह अभिमन्यु निकल आए ! मारा कस कर वाण—बृहद्वल की ध्वजा कट कर उड़ गई आकाश में ! और उनकी चलाई हुई गदा भी बीच ही में कट कर खण्ड खण्ड हो गई ! यह लो, अभिमन्यु ने उनका घोड़े भी मार डाले ! बैचारे को बिना रथ का कर छोड़ा ! अब भला वह पैदल क्या लड़ेगा ? ऐसे जैसे वीर का सामना थोड़े हैं ? लोहे का चना है—वज्र का टुकड़ा है ! ठग्रा नहीं है !

अब वह देखो, बूढ़े दादा भीष्म भी अपने लिलार का पसीना नहीं पाछ पाते ! क्या करें, पड़पोता दम नहीं लने देना ! जोर तो बहुत लगाते हैं बूँदियों की तरह तीर बरसा रहे हैं, उनके साथ साथ कृतवर्मा आदि वीर भी णडी-चोटी का पसीना एक किण हुए हैं, मगर अभिमन्यु तनिक टस से मस नहीं होंने—शरीर लहू लुहान हो गया है, बड़े बड़े धुरन्धर वीर घेर हुए हैं, फिर भी पट्टे की आँच तनिक कम नहीं होती ! देखसे देखते दादा की ऊँची ध्वजा काट ही डाली,

महारानी अम्बष्ठ के पीछे पड गय। फिर उसने भी पानी पानी कर डाडा—त्रेचारा रिना रथ और हथियार का हार्न सिर पर पाव रख कर भागा।

किन्तु दुर्याज्ज अपन वोर पुत्र नी यह करारी हार भला कर सह सकता था। उसने अपन प्रजान मित्र अलम्युप राक्षस को उढावा दिया। वह एकाएक अभिमन्यु पर टूट पडा—बडा ही घाघोर माया युद्ध ठाना; पर अभिमन्यु ने बडी मुस्तैदी से उसके सारे हौसले पस्त कर दिये—वह भी रथ छोड अपनी जान बेकर पैदल ही भाग खडा हुया।

पाटवों की यह जीत दुर्याज्ज कैसे देखता रह ? वह युधिष्ठिर क पकडने की रन्दिशें राधने लगा—उनको बीहड घेरें में डालकर पकडने के लिए चक्रव्यूह की लडाइ ठानने का रन्दो-रस्त किया। अजुन को कुरुक्षेत्र से अलग दूर हटा ल जान का रीडा—उसके मित्र और त्रिगतदेश के राजा—सुशर्मा ने उठाया, क्यार्कि उनके रहते युधिष्ठिर का बाल बाँका होना टेंडी खीर थी।

सुशर्मा के झमेले में श्रीकृष्ण सहित अजुन के फँस जाने से युधिष्ठिर बडे चिन्तित हो गये। माया ठोककर कहन लगे—अब चक्रव्यूह की भूल भुलैया में पैठकर उसके—पर नहीं—सात पेचीले दरगाजा को कौन भेदेगा ?

बडे ताऊ को उडी उदासी के साथ पेसा कहते देखकर

चुप धे, पर इस पार तो अभिमन्यु न देखते ही देखते उनको तलवार न घाट उतार दिया। मचा हाहाकार ! जुट पड़े सब-क मत्र अभिमन्यु पर ! लेकिन इतन पर भी उस यीर राजा के मध हुण हाथ की सपाह देख कर मत्र क तनाट मे सिकुडन पड गइ । ड्राग ग्रौर कर्ण सररीवे महारथी भी दांतों तले उँगली तया मर रह गण ।

जत्र अभिमन्यु ने मत्र के नाशों ठम कर दिया, तत्र दुर्योधन भी मलाह मे कर्ण ने उनके धनुष की डारी काट डाली, और उसी समय अश्वत्थामा ने उनका रुच छेड डाला, और लग हाथों दु शासन ने भी उनके सारथी और घोडों को मार कर लक्ष्मण कुँवर की आग जुझा ली । किन्तु सब होने पर भी अभिमन्यु के चेहरे पर तनिक सिकुडन नहीं आई ! टूटे रथ का चक्का लेकर मत्र की खपर लेने लगे । उस समय वह अपने मामा श्रीकृष्ण की तरह सुदर्शन चक्र धारण कर प्रजय मचाते हुण से देख पड़े । जब द्रोण ने उस पहिण को भी काट डाला, तव उन्होंने गदा उठाइ, और अपने बड़े ताऊ भीम की तरह गदा-युद्ध मे शाभायमान हो कर शत्रु की सेना में हैजा फैजा दिया ! तत्र तक उधर मे दु शासन का वेटा, जो गदा-युद्ध मे पडा शोख था, अखाडे में उतर आया । दोनों नौजवान छोकरे दिल खोल कर लड़े, और लडते लडते एक दूसरे की गदा से घायल होकर बेहोश गिर पड़े ।

